औषधीय पौधे

भारत — देश और लोग

औषधीय पौधे

सुधांशु कुमार जैन

नेशनल बुक ट्रस्ट, इंडिया

विषय सूची

चित्र सूची

रंगीन प्लेट

रेखाचित्र

14. **काला-दाना** (ईपोमेआ नील)
15. **पंचपत्री** (ईपोमेआ पेसटिग्रिडस)
16. **कलमीशाक** (ईपोमेआ आक्वाटिका)
17. **दोपत्तीलता** (इपोमेआ पेसाकाप्रे)
18. **महुआ** (माधूका ईंडिका)
19. **निसोथ** (मेरेंनिआ टुर्पेथुम)
20. **असीद** (सोलानुम ईंकानुम)
21. **जामुन** (सीज़ीजिउम कूमिनी)
22. **इमली** (टामारींडुस ईंडिका)
23. **अर्जुन** (टेर्मिनालिआ अर्जुना)
24. **बिषखोपड़ा** (ट्रिआंथेमा पोर्टूलाकास्ट्रुम)
25. **गोखरु** (ट्रिबुलुस टेरेस्ट्रिस)
26. **अश्वगंध** (वीदानिआ सोम्नीफेरा)

दो शब्द

जड़ी-बूटियां शब्द सुनते ही हमारे मन में किसी अद्‌भुत अथवा दैवी शक्तिशाली वनौषधि का विचार आता है। हमारे साहित्य में जड़ी-बूटियों द्वारा न केवल असाध्य से असाध्य रोगों की चिकित्सा के विवरण हैं, वरन उनका अनेक चमत्कारी एवं अविश्वसनीय घटनाओं से भी संबंध मिलता है। अमुक पौधे के बीज को, वशीकरण मंत्र पढ़कर, किसी व्यक्ति पर फेंकना और उसे वश में कर लेना, अमुक जड़ चबा लेने से दीर्घायु का सुख प्राप्त कर लेना, अथवा अमुक रस की दो बूंद मात्र से मृत व्यक्ति को जीवित कर लेने आदि की कथाएं प्रायः सुनने को मिलती हैं। किसी वनौषधि की महिमा का गुणगान करते समय प्रायः कहना इतना प्रभावकारी नहीं समझा जाता था कि वह किसी खोज, विश्लेषण अथवा अनुभव पर आधारित है, जितना कि यह कहना कि वह किसी साधु महात्मा द्वारा दी हुई या बतलाई हुई है। संभव है, यह उस समय की परिस्थितियों के अनुकूल रहा हो।

किंतु युग परिवर्तन के साथ, जब मनुष्य प्रत्येक वस्तु या घटना को कारण परिणाम की तुला पर तौलने लगा, तो उसे बहुत-सी पुरानी बातें असंगत-सी लगीं और हमारी वनौषधियों के पूर्वाग्रह इतने स्वर्णिम होने पर भी व्यवहार में उनका प्रयोग घटता गया। आज उनकी महत्ता पर, उनकी उन्नति और प्रसार पर, भाषण अधिक है, श्रद्धा कम है। ऐसा क्यों?

जब उन्नत देशों में वर्तमान औषध प्रणालियों पर दिन रात खोज कार्य होता रहा, हमारी औषधविद्या अपने स्वर्णिम इतिहास, चमत्कार एवं अपनी सफलता की पूर्व कहानियों पर ही संतुष्ट हो, हाथ पर हाथ धरकर बैठी रही। साथ ही बाजारों में आने वाली नयी नयी विदेशी ढंग की औषधियों के स्वागत में हमने इतना उत्साह दिखाया कि हम आयुर्वेद की अनेक मानक, सिद्ध उपयोगी औषधियों से भी विमुख हो गये, और हममें से अधिकांश ने कभी यह जानने का प्रयत्न ही नहीं किया, या कहें कि विचार तक नहीं किया कि क्या हमारी अपनी वनौषधियों में कुछ उपयोगी वस्तुएं हैं?

लगभग 50 वर्ष पूर्व तक हमारे औषधीय पौधों के चमत्कार और उनके अद्वितीय गुणों के दावों की विधिवत परीक्षा ही नहीं की गयी; इसी कारण उनके पक्ष अथवा विपक्ष, दोनों ही पर, विश्वस्त या वैज्ञानिक रूप से कुछ भी कहना संभव नहीं था। जो एक बार पुस्तक या पत्रिका में छपा, उसका दूसरे लेखक ने भाषांतर, अनुवाद, रूपांतर अथवा शुद्ध अनुकृति कर दी; इस कारण अनेक अविश्वस्त नुस्खे औषधीय साहित्य में घुस गये, फैलते गये और वे अशुद्धियां आयुर्वेद साहित्य में शाश्वत-सी हो गयीं। ऐसी ही कुछ समस्याओं की चर्चा; मैंने प्रस्तावना में की है।

भारतीय वनौषधियों पर अनेक बड़े ग्रंथ और छोटी छोटी पुस्तकें मौजूद हैं; इनमें से अधिकांश विशेषज्ञों, जैसे वनस्पतिशास्त्री, आयुर्वेदाचार्य, रसायनशास्त्री तथा औषधनिर्माता आदि के लिए उपयोगी हैं। ये ग्रंथ लिखे ही उस आशय से गये हैं।

किंतु जिस प्रकार के पाठकों के लिए नेशनल बुक ट्रस्ट यह पुस्तकमाला ***भारत-देश और लोग*** प्रस्तुत कर रहा है, उस प्रकार के पाठकों के लिए कोई भी उपयुक्त पुस्तक इससे पूर्व उपलब्ध नहीं थी। इस प्रकार, निस्संदेह ट्रस्ट बधाई का पात्र है कि उसने औषधीय पौधों को भी इस पुस्तकमाला के लिए उपयुक्त विषय समझा। नेशनल बुक ट्रस्ट द्वारा प्रकाशित पुस्तकें पढ़ने से यह स्पष्ट हो जाता है कि अपने अपने विषय पर वास्तव में वे अनूठी रचनाएं हैं, और उन विषयों पर पूर्व मुद्रित विशाल साहित्य से वे कितनी भिन्न और रोचक हैं।

प्रस्तुत पुस्तक में लगभग एक सौ औषधीय पौधों पर, यथासंभव केवल विश्वस्त सूत्रों पर ही आधारित, सामग्री दी गयी है।

पुस्तक में दिये हुए रंगीन फोटो व रेखाचित्र, जिन अनेक वैज्ञानिकों तथा संस्थाओं के सहयोग से प्राप्त हुए हैं, एवं जिनके नाम चित्र सूची में अंकित हैं, मैं उन सबका आभारी हूं।

स्व. डा. संतापाऊ ने, न केवल इस पुस्तक के लिए पौधों एवं उनके चित्रों के चुनाव में तथा पुस्तक की रूपरेखा निर्धारित करने में सहायता दी थी, वरन इसके अंग्रेजी संस्करण की पांडुलिपि का अधिकांश भाग स्वयं ध्यानपूर्वक पढ़ा और अनेक उपयोगी सुझाव दिये थे।

श्रीमती सत्या जैन, डा. वेद प्रकाश त्रिपाठी एवं श्रीमती शशि अग्रवाल ने हिंदी भाषा संबंधी अनेक उपयोगी सुझाव दिये हैं, मैं उनका आभारी हूं।

पौधों के कन्नड़, मलयालम तथा तमिल नामों के वर्णविन्यास में मेरे कई मित्रों ने सहायता दी है। डा. विश्वनाथ मुद्गल ने केऊ तथा मिश्मी तीता पर सामग्री एकत्रित करने में सहायता दी है।

औषधीय पौधों पर साहित्य इतना विशाल और विस्तृत है कि किसी नयी खोज या अनुभव की रिपोर्ट मेरे ध्यान से छूट गयी हो, यह असंभव नहीं। यदि पाठक ऐसी कमियों की ओर मेरा ध्यान आकर्षित करेंगे तो मैं उनका साभार स्वागत करूंगा, और अगले संस्करण में उनके समाधान का प्रयत्न करूंगा।

कई वर्ष पूर्व पढ़े एक वाक्य से यह भूमिका समाप्त करूंगा – यदि लेखक उस समय की प्रतीक्षा में बैठा रहे जब उसकी रचना में किसी संशोधन या आलोचना की संभावना ही न रहे, तो कभी कुछ नहीं लिख सकेगा।

– सुधांशु कुमार जैन

प्रस्तावना

औषधि तथा शल्य चिकित्सा (सर्जरी) का इतिहास कदाचित उतना ही पुराना है, जितना मानव का । किंतु प्रागैतिहासिक काल में घटनाओं को लिपिबद्ध करने का साधन न होने से आज हमें यह ज्ञात नहीं है कि रोग और उसके निवारण के विषय में आरंभ से मानव की क्या धारणाएं या साधन थे । जब से घटनाओं के प्रमाण मिलते हैं, यह ज्ञात होता है कि पुरातन काल में, अन्य विद्याओं की भांति, रोग के निदान एवं निवारण की विद्या का भी अनेक नक्षत्रों, ऋतुओं एवं दैवी शक्तियों से घनिष्ठ संबंध समझा जाता था, इसलिए चिकित्सा एवं परिचर्या के साथ साथ देवी-देवता, धर्म तथा अंधविश्वास आदि अनेक रूढ़ियां चिकित्सा का एक आवश्यक अंग-सा बन गई थीं । फिर भी, किसी न किसी प्रकार की वास्तविक चिकित्सा एवं परिचर्या रोग-निवारण का साधन अवश्य रही होगी यह निश्चित है । जब कभी आज के वैज्ञानिक युग के मानव की चिर अतृप्त जिज्ञासा ने भूतकाल की गहराइयों में दृष्टि डाली है, तभी से पुरातन काल की घटनाओं के लिखित, अर्द्धलिखित या अलिखित कुछ न कुछ प्रमाण मिल ही गये हैं । और ये सभी हमारे पूर्वजों की (उस परिस्थिति में) योग्यता, दूरदर्शिता एवं पुरुषार्थ भरे इतिहास के रोचक पृष्ठ हैं ।

भारतवर्ष में रोग निवारण के लिए पौधों के प्रयोग का कदाचित सर्वप्रथम वर्णन ऋग्वेद में मिलता है । ऋग्वेद में सूत्रों में वर्णित अनेक औषधियों के नाम तो इतने शुद्ध और स्पष्ट हैं कि आज भी उन नामों से पौधों को भली भांति पहचान सकते हैं, जैसे सेमल, पीपल, पलाश तथा पिठवन । किंतु ऋग्वेद में प्रायः औषधियों के विषय में अधिक विवरण नहीं है । अथर्ववेद में अधिक विस्तारपूर्वक वर्णन है । ऋग्वेद का रचना काल लगभग 3,500-1,800 वर्ष ईसा पूर्व बताते हैं । वेदों की रचना के बाद लगभग 1,000 वर्ष तक इस विद्या की उन्नति का कोई प्रमाण नहीं है । उसके पश्चात चरक तथा सुश्रुत के भारतीय वनौषधि पर दो अत्यंत महत्वपूर्ण ग्रंथ – चरक संहिता एवं सुश्रुत संहिता – सामने आये । चरक संहिता में लगभग 700 औषधियों का वर्णन है, इनमें से कुछ पौधे भारतीय नहीं थे । सुश्रुत संहिता में शल्य चिकित्सा (सर्जरी) का वर्णन है । सुश्रुत को विदेशी वैज्ञानिकों ने भी बहुत मान्यता दी है । वे स्वीकार करते हैं कि भारत में शायद 'प्लास्टिक सर्जरी' की प्रथा 2,000 वर्ष पहले से ही थी ।

चरक के समय से आज तक अनेक आयुर्वेदाचार्यों, साधु महात्माओं तथा अनुसंधानकर्ताओं के सहयोग से भारतीय वनौषधियों की संख्या बढ़ती गई और अब लगभग 1,500 पौधों में औषधीय गुण बताये जाते हैं ।

भारतीय वनौषधियों पर अनेक छोटी बड़ी पुस्तकें लिखी गई हैं । कई तो विशाल ग्रंथ

हैं, जिनमें सहस्त्रों पृष्ठ और अनेक भाग हैं। क्योंकि कभी कभी एक पौधे के विषय में भारत के भिन्न प्रदेशों में भिन्न भिन्न धारणायें और मान्यतायें हैं। संस्कृत के अतिरिक्त अन्य भारतीय भाषाओं में भी आयुर्वेद पर पर्याप्त साहित्य लिखा गया है। सर्वश्री दत्त, जार्ज वाट, कर्नल रामनाथ चोपड़ा (तथा उनके साथी एवं शिष्यगण), के. नादकर्णी, के. कीर्त्तिकर, बी.डी. बसु, बी. मुखर्जी, चंद्रराज भंडारी, के. पी. बिश्वास, कृष्णप्रसाद त्रिवेदी, देवीशरण गर्ग, 'भारत की संपदा' (वेल्थ ऑफ इंडिया) के संपादकगण आदि अनेक विद्वानों ने इस विषय के संकलन में प्रशंसनीय कार्य किया है। किंतु कुछ लेखकों ने पौधों के नाम (या सही पहचान) आदि का ठीक ध्यान न रखते हुए सामग्री संकलित कर दी है। फल यह हुआ कि कुछ पौधों पर तो इतने अतिरिक्त औषधीय गुण थोपे गये हैं मानो वे सर्व रोग निवारक हो हों।

प्राचीन साहित्य में जिन चमत्कारी औषधियों का उल्लेख है, उनके नमूने तो उपलब्ध हैं नहीं; न ही उस समय के वैद्यों के लिए यह संभव था कि वे भावी पीढ़ियों के लिए ऐसा कोई प्रामाणिक संग्रह बना सकें। कुछ पौधों का तो पूरा या ठीक वर्णन नहीं मिलता है। इसलिए, पौधों के केवल तत्कालीन उल्लिखित नाम से आज उनकी पहचान करना या यह जानना कि हमारे पूर्वजों का किस पौधे से आशय था, असंभव-सा है। पौधों के स्थानीय नाम तो समय के साथ व्यक्ति व्यक्ति के बीच बदलते जाते हैं। वनस्पतिशास्त्र में ऐसे अनेक दृष्टांत हैं, जहां एक ही नाम दो या अधिक पौधों को दिया गया है। उदाहरण के लिए हम पुनर्नवा, रूदंती, ब्राह्मी, दूधी, सोमलता के दृष्टांत ले सकते हैं; इनसे बड़ी उलझन हुई है। भारत में कुछ कार्यकर्ता अब इन गुत्थियों को सुलझाने का प्रयत्न तो कर रहे हैं, किंतु इसमें अनेक विषयों के विशेषज्ञों का निःस्वार्थ सहयोग वांछनीय है, जो प्रायः दुर्लभ रहता है। फिर भी इस दिशा में जो भी कार्य किया जायेगा, वह वनस्पतिशास्त्र, आयुर्वेद, औषधिनिर्माण आदि कई क्षेत्रों में उपयोगी होगा।

प्राचीन काल में वनौषधियों के विषय में प्राप्त ज्ञान की जानकारी कुछ लिखित प्रमाणों के अतिरिक्त एक अन्य साधन द्वारा भी संभव है। वह है, हमारे देश के सुदूर वनों में रहने वाली आदिम जातियां, जिनकी संस्कृति अब भी बहुत कुछ पुराने ढंग की है। आदिवासियों के बीच कार्य करने पर ज्ञात होता है कि प्राचीन वनौषधियों का कुछ ज्ञान मौखिक परंपरा द्वारा, पीढ़ी-दर-पीढ़ी, आज तक भी जीवित रह गया है। कुछ कार्यकर्ताओं ने इस सामग्री को एकत्रित करने का प्रयास किया है, किंतु यह कार्य जितने बड़े पैमाने पर तथा जिस तत्परता से किया जाना चाहिए था, उसका अल्पांश भी नहीं हुआ है। इस प्रकार के खोज कार्य को एथनोबॉटनी (अर्थात आदिवासियों का वनस्पति से संबंध) कहते हैं। 1960 से मैंने मध्य प्रदेश के आदिवासियों के बीच भी ऐसा कुछ कार्य आरंभ किया। बंगाल, असम व उड़ीसा के कुछ आदिवासियों के बीच भी कार्य किया। पौधों के अनेक ऐसे औषधीय गुण इन आदिवासियों से ज्ञात हुए जिनका किसी साहित्य में वर्णन नहीं मिलता, इनमें से कुछ का उल्लेख प्रस्तुत पुस्तक में किया गया है, किंतु इनकी वैज्ञानिक परीक्षा विधिवत होनी आवश्यक है।

यह प्रश्न प्रायः ही उठाया गया है कि वनौषधियों की वैज्ञानिक परीक्षा की जानी चाहिए। यह ठीक ही है। कई बार आयुर्वेद की अत्यंत प्रचलित औषधियां प्रयोगशालाओं के परीक्षणों

में निरर्थक सिद्ध हुई। इससे यह संकेत अवश्य मिलता है कि हमें सभी वनौषधियों की परीक्षा यथासंभव कर लेनी चाहिए। किंतु इसका एक दूसरा पहलू भी है। संभव है कि औषधि में कोई ऐसे अज्ञात तत्व निहित हों, जो रोगी को लाभ पहुंचाते हैं, किंतु रासायनिक विश्लेषण में दिखाई नहीं देते। यह भी संभव है कि पौधे में विद्यमान भिन्न एल्केलाइड या अन्य तत्व जब एक साथ मिल कर क्रिया करते हैं, जैसे समूचे पौधे के क्वाथ में, तभी वह उपयोगी होता है। उनके एल्केलाइड आदि अलग अलग 'व्यर्थ' सिद्ध होते हैं। साथ ही, पौधे फूलने का समय, फलने का समय, बीज या छाल एकत्रित करने का समय, उगने की ऋतु तथा स्थान, आदि आदि अनेक बातें औषधि की उपयोगिता पर प्रभाव डालती हैं; और यह असंभव नहीं कि रासायनिक विश्लेषण करने वालों ने इन सब का ध्यान न रखा हो।

ऐसा अनुमान है कि भारत में लगभग 2,000 पदार्थ औषधियों में प्रयुक्त होते हैं, इनमें लगभग 200 पदार्थ जीव जंतुओं से प्राप्त होते हैं; इतने ही खनिज पदार्थ हैं। लगभग 1,500 पदार्थ, फल, फूल, पत्ते, जड़, छाल, गोंद, रस आदि–वनस्पति जगत की देन हैं। हमारे विशाल–देश के लिए यह संख्या कुछ अधिक नहीं है। भारत में नाना प्रकार की जलवायु मिलती है। 49° से. से $- 43^{\circ}$ से. तक का तापमान, 100 मिमी से लेकर 10,000 मिमी से भी अधिक वर्षा के क्षेत्र, समुद्रतटों से लेकर लगभग 6,000 मी. ऊंचाई तक के स्थान, आदि कारणों से भारत में लगभग 1,500 से अधिक जातियों के पौधे (एंजिओस्पर्म) मिलते हैं, जिनमें औषधीय गुण बताये जाते हैं।

इन 1,500 पौधों में से केवल एक सौ का चुनाव कदाचित मेरी सबसे बड़ी कठिनाई थी। अतः केवल वही पौधे चुने हैं, जिनकी उपयोगिता वैज्ञानिक विधियों से परखी और सिद्ध हो चुकी है, अथवा जो पौधे भारतीय मानक औषध कोश (इंडियन फार्मेस्यूटिकल कोडेक्स), ब्रिटेन का मानक औषध कोश (ब्रिटिश फार्मेस्यूटिकल कोडेक्स) तथा अमेरिका का मानक औषध कोश (यूनाइटेड स्टेट्स डिस्पेंसेटरी) में मान्य समझे गये हैं; पुस्तक में उन्हीं का विवरण दिया गया है। अधिकतर भारत के देशज पौधे ही लिये गये हैं। कुछ ऐसे विदेशी पौधे भी, जिनकी अब भारत में खेती हो रही है, या जिनका व्यापार कार्य में महत्व है, चुन लिये गये हैं। इनमें से कुछ पौधे तो अब भारत में फैल भी गये हैं और स्वाभाविक रूप से उगते दिखाई देते हैं।

पुस्तक के अध्याय, पौधों के वैज्ञानिक नाम के वर्णक्रमानुसार हैं। प्रत्येक अध्याय के शीर्षक के लिए पौधे का मान्य तिजारती नाम (ट्रेड नेम) या कोई अधिक प्रचलित हिंदी नाम चुन लिया है; यदि एक से अधिक नाम भारतीय औषध कोश में मान्य समझे गये हैं, अथवा व्यापार कार्य में प्रचलित हैं, तो उन्हें दूसरी पंक्ति में कोष्ठक में दे दिया गया है।

जहां तक संभव हुआ है, पौधों के सही स्वीकृत वैज्ञानिक नाम ही प्रयोग किये गये हैं। पाठकों की सुविधा के लिए कुछ पौधों के स्वीकृत नाम के तुरंत बाद ही, अधिक प्रचलित होने के कारण, कुछ पुराने अस्वीकृत नाम भी दे दिये हैं। पौधों का कुल (फैमिली) कोष्ठक में दिया है। उसके नीचे भारतीय भाषाओं में नाम दिये हैं, यदि अंग्रेजी का नाम मिल सका है, तो वह भी दे दिया है। भारतीय भाषाओं में सर्वप्रथम हिंदी व संस्कृत के नाम हैं; उसके बाद

वर्णक्रमानुसार अन्य भाषाएं हैं। भारतीय भाषाओं में पौधों के नाम अनेकानेक मिलते हैं, उन सबका यहां लिखना न संभव था और न आवश्यक; इसलिए केवल एक दो अधिक प्रचलित नाम ही लिखे हैं। जिन भाषाओं की लिपि मैं नहीं जानता, उनके शब्दों के उच्चारण अपने कुछ मित्रों की सहायता से सुने, और देवनागरी में लिखे। फिर उच्चारण में अंतर होने से, तथा बार बार लिप्यंतरण होने से इन नामों में अशुद्धियां हो जाना असंभव नहीं है। कुछ पौधों के वैज्ञानिक अथवा अन्य नाम किस प्रकार बने हैं, इसका भी संक्षिप्त वर्णन है।

पौधे का वर्णन संक्षिप्त रूप में ही दिया है। प्राय: वही लक्षण हैं जिन्हें पढ़कर पाठक पौधे के आकार का अनुमान कर सकें, तथा उन्हें पौधे पहचानने में सुविधा हो सके। यद्यपि केंद्रीय शिक्षा मंत्रालय द्वारा मान्य तकनीकी शब्द ही प्रयोग किये गये हैं, किंतु पाठक को कठिन शब्दों के जाल से बचाने का यथासंभव प्रयास किया गया है। पौधे का वर्णन केवल पहले की प्रकाशित पुस्तकों पर आधारित नहीं है, बल्कि पौधे के नमूने स्वयं देखकर अथवा अपने व्यक्तिगत अनुभव के आधार पर लिखा गया है। पौधों को पहचानने में सुविधा हो, इस दृष्टि से पुस्तक में वर्णित बहुत-से पौधों के चित्र भी दिये गये हैं।

पौधों का प्राप्ति-स्थान भी कलकत्ते में विशाल वनस्पति संग्रहालय में रखे सहस्त्रों नमूनों तथा विश्वस्त साहित्य की सहायता से लिखा है।

विशेषकर पौधों के औषधीय गुणों पर जो भी सूचना दी गयी है, अत्यंत विश्वसनीय साहित्य पर आधारित है और केवल वे ही गुण लिखे गये हैं, जिन्हें ब्रिटेन तथा अमेरिका के मानक औषध कोशों ने स्वीकार किया है, अथवा जिन गुणों की पुष्टि वैज्ञानिक विधि से या अस्पतालों में की जा चुकी है। इस संबंध में मैंने पिछले 25-30 वर्षों में छपे साहित्य की छानबीन की है। इस खोज के समय मुझे एक बात यह स्पष्ट हुई कि हमारे औषधीय पौधों में से बहुत थोड़ों की ही वैज्ञानिक परख की गई है। इस कार्य में समय तो बहुत लगता है किंतु यदि हम अपनी वनौषधियों से, इस उपयोगी संपत्ति से लाभ उठाना चाहते हैं, तो इस कार्य को शीघ्र करना ही होगा।

कहीं कहीं पर औषधीय पौधों के किसी विशेष अन्य उपयोग का वर्णन भी किया गया है। एक वंश की मुख्य औषधीय जाति का विवरण देने के उपरांत अन्य जातियों का भी संक्षिप्त वर्णन दिया गया है।

विशेष

यह बता देना आवश्यक है कि इस पुस्तक का उद्देश्य पाठकों का भारत में होने वाले कुछ मुख्य औषधीय पौधों से परिचय कराना मात्र है। इसमें चिकित्सा के आशय से नुस्खे नहीं दिये हैं। अनेक औषधियां कई पौधों के उपयोगी तत्व मिलाकर बनती हैं; उन तत्वों को प्राप्त करने की विधि, उनकी मात्रा, तथा औषधि बनाने आदि की क्रिया, सभी अनुभवी वैद्यों या औषध निर्माताओं का कार्य है। रोग का सही निदान, तथा औषधि के सेवन का समय, मात्रा, उससे संलग्न अन्य उपचार एवं परिचर्या सभी महत्वपूर्ण बातें हैं जिन्हें योग्य वैद्य ही समझते व जानते हैं। अनभिज्ञ व्यक्तियों के लिए, अपनी समझ से किसी औषधि का प्रयोग करना अत्यंत

हानिकारक हो सकता है।

भारत में एलोपैथी तथा होम्योपैथी के प्रचलन के कारण आयुर्वेद में अधिकांश लोगों की श्रद्धा निश्चय ही घटती जा रही है, किंतु वनौषधियों द्वारा रोग निवारण के पक्ष में बहुत कुछ कहा व लिखा जा सकता है। यह सत्य है कि आयुर्वेद साहित्य में किसी इक्के दुक्के रोगी पर आजमाये हुए या तीर तुक्के के ढंग पर सफल अनेक नुस्खे शामिल हो गये हैं। किंतु, यह भी सत्य है – और कहीं अधिक मात्रा में कि हमारी वनौषधियों में सैकड़ों पौधे ऐसे हैं, जिनका वैज्ञानिक विश्लेषण भारत या विदेशों में हो चुका है; जो पहले जंतुओं पर और तदुपरांत औषधालयों में रोगियों पर आजमाये जा चुके हैं, और जिन्हें न केवल भारत, वरन विदेशी मानक औषध कोशों में मान्यता मिल चुकी है।

कौन-सी चिकित्सा प्रणाली अच्छी है, यह न इस पुस्तक के विषय का क्षेत्र है, न इसकी चर्चा यहां संभव है। केवल इतना लिखना पर्याप्त है कि जिस देश की 80 प्रतिशत जनता छोटे गांवों में रहती हो, तथा जिसके इर्द-गिर्द वनौषधियां यथेष्ट मात्रा में फैली पड़ी हों, और जहां के अधिकांश लोगों की दैनिक आय एक रुपये से भी कम हो, वहां रोग पहचानने की लंबी, दूभर विधियां, दुर्लभ यंत्र और महंगी दवाईयां सर्वसाधरण के उपयोग का साधन नहीं बन सकतीं।

– सुधांशु कुमार जैन

1. खोकली

(आकालिफ़ा)

वैज्ञानिक नाम : **आकालिफ़ा ईंडिका** (*Acalypha indica* L.) चित्र 1

(कुल – एउफ़ोर्बिएसिए)

अन्य नाम : **हिंदी** – कुप्पी;
संस्कृत – हरित्तमंजरी;
कन्नड़ – कुप्पीगिडा;
गुजराती – वेंछिकांटो, चररजो-झाड़, रुंछाडो-दादरो;
तमिल – कुप्पेमणि;
तेलुगु – कुप्पेमणि;
बंगला – मुक्तझूरि, मुक्तबर्सी;
मराठी – खोकली;
मलयालम – कुप्पामणि ।

व्यापार कार्य का नाम आकालिफ़ा वैज्ञानिक नाम पर आधारित है ।

वर्णन

यह लगभग 75 सेमी ऊंचा पौधा होता है । इसके पत्ते 3-8 सेमी लंबे, अंडाकार अथवा चतुर्कोण-अंडाकार से होते हैं । पत्तों में प्रायः तीन शिराएं होती हैं, और उनके किनारे दंतुर होते हैं, पत्तों के डंठल पत्तों से भी लंबे होते हैं । फूल छोटे छोटे होते हैं तथा पत्तों के कक्ष में, स्पाइक जैसे, सीधे गुच्छों में लगते हैं । मादा पुष्प के नीचे एक तिकोना-सा सहपत्र होता है । नरपुष्प अत्यंत छोटे होते हैं, तथा स्पाइक के ऊपरी भाग में लगते हैं । फल रोयेंदार होते हैं तथा सहपत्रों में ढके रहते हैं ।

प्राप्ति-स्थान

खोकली का पौधा भारत के सभी मैदानी भागों में पाया जाता है । यह प्रायः उद्यानों व खेतों में तथा सड़कों व मकानों के आसपास उग आता है ।
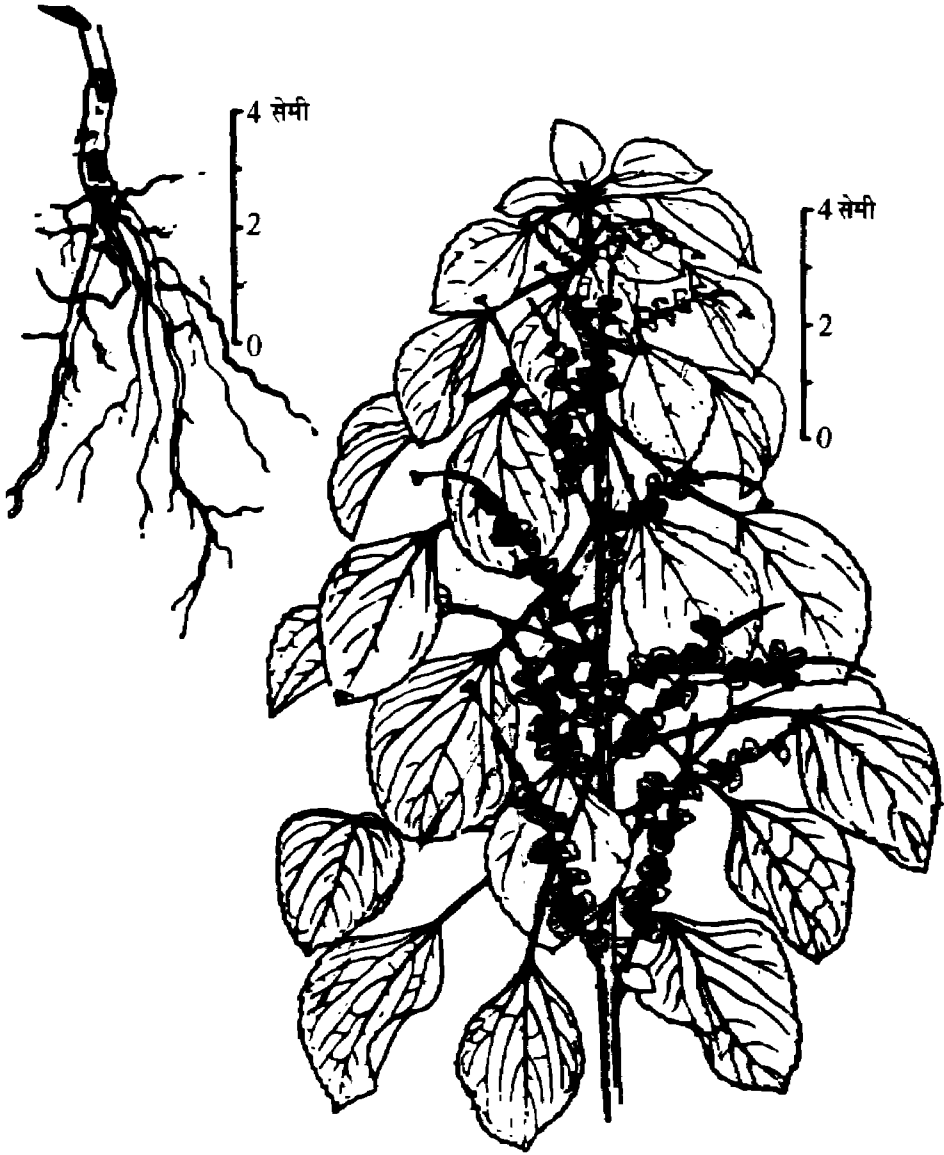
चित्र 1 – खोकली (आकालिफ़ा ईंडिका)

औषधीय गुण

खोकली के पौधों पर जिस समय फूल आते हैं,उस समय उन्हें समूचा उखाड़कर सुखा लेते हैं और औषधि में प्रयोग करते हैं।

इस पौधे में ईपेकाक जैसे गुण बताते हैं। यह (ब्रोंकाइटिस) श्वास नली की सूजन, श्वासरोग या दमा, निमोनिया तथा गठिया में उपयोगी है। इसकी जड़ व पत्ते रेचक होते हैं। पत्तों का रस वमनकारी होता है, अर्थात उसके सेवन से कै हो जाती है। ताजे पत्तों को पीस कर फोड़ों पर भी लगाते हैं।

2. अतीस

(अकोनाइट)

आकोनीटुम जाति
(कुल– रैननकुलेसिए)

अकोनाइट एक प्रसिद्ध वनौषधि है, इसके प्रकंद विषैले होते हैं, किंतु नियमित मात्रा में सेवन करने से इनमें औषधीय गुण होते हैं। ब्रिटेन में आकोनीटुम नापेल्लुस *(Aconitum napellus* L.) मान्य औषधि है। यह जाति तो भारत में नहीं होती, किंतु इसके वंश की अन्य जातियां पाई जाती हैं जो उतनी ही उपयोगी हैं। इनमें से दो का वर्णन नीचे किया गया है।

अतीस (वैज्ञानिक नाम : आकोनीटुम हेटेरोफील्लुम *Aconitum heterophyllum* Wall. कश्मीरी– अतीस, अतिविष, पोदिस)

यह एक छोटा-सा पौधा है जो उत्तर पश्चिमी हिमालय में 2,000 से 4,000 मी ऊंचाई वाले क्षेत्रों में पाया जाता है। अतीस के प्रकंद ज्वर एवं ज्वर के बाद की दुर्बलता दूर करने के लिए उपयोगी बताये जाते हैं। अतीस में बलवर्धक गुण तो अवश्य हैं, किंतु ज्वरनाशक के रूप में इसकी मान्यता अधिक नहीं है। यह अतिसार व पेचिश में भी उपयोगी है।

बनबलनाग (वैज्ञानिक नाम : आकोनीटुम कासमांथुम *Aconitum chasmanthum* Stapf)

यह पौधा भी उसी क्षेत्र में पाया जाता है जहां अतीस होता है। यद्यपि इस पौधे के प्रकंदों में ब्रिटेन वाले अकोनाइट से उपयोगी तत्वों की मात्रा लगभग दस गुना अधिक होती है, फिर भी उनकी क्षमता उतनी नहीं होती। ब्रिटेन वाली जाति के स्थान पर बनबलनाग प्रयोग करने के लिए उपयुक्त बताया जाता है।

अन्य जातियां

इनके अतिरिक्त, दूधिया-विष (वैज्ञानिक नाम : आकोनीटुम डीनार्रहीज़ुम *Aconitum deinnorrhizum* Holmes ex Stapf; कश्मीरी– सफेद-विषमोहरा) तथा कुछ अन्य जातियां भारत में मिलती हैं। उनकी उपयोगिता के विषय में अधिक ज्ञान नहीं है।

बाजार में अकोनाइट नाम से जो औषधियां बिकती हैं, प्रायः उनमें कई जातियों के प्रकंद

मिले रहते हैं।

अकोनाइट में जो एल्केलाइड होते हैं, वे प्रायः अत्यंत विषैले होते हैं, और औषधि में उनका सेवन अत्यंत निर्धारित मात्रा में सावधानी से किया जाता है, अन्यथा नाना प्रकार के हानिकारक प्रभाव उत्पन्न होने का भय रहता है। इसलिए आजकल इस औषधि का प्रयोग केवल तंत्रिकाशूल (न्यूरेलजिया) या संबंधित रोगों में बाहरी लेप आदि में करते हैं। इसका सेवन नहीं किया जाता।

3. बच

(कालामुस)

वैज्ञानिक नाम : **आकोरुस कालामुस** *(Acorus calamus L.)*

(कुल – अरेसिए)

अन्य नाम : **हिंदी** – घोड़ा-बच, सफेद-बच;
संस्कृत – भूतनाशिनी;
असमिया – थेमेप्रि;
कन्नड़ – बजेगिडा;
गुजराती – गंधिलोवज;
तमिल – वाशंभू;
तेलुगु – वसा;
बंगला – बच;
मराठी – वेखंड;
मलयालम – वायंपू;
अंग्रेजी – स्वीट-फ्लैग।

वर्णन

यह एक छोटा पौधा होता है; इसके प्रकंद विभाजित होकर भूमि में दूर दूर तक फैल जाते हैं। प्रकंद अत्यंत सुगंधित होते हैं। इसके पत्ते बहुत लंबे (1-1.5 मी तक), तथा केवल 2-3 सेमी चौड़े होते हैं। फूल छोटे, केलई से रंग के होते हैं और 5-10 सेमी लंबी स्पाइकों में आते हैं। ये स्पाइकें विशेष प्रकार की होती हैं और 'स्पेडिक्स' कहलाती हैं। फूल वाले स्तंभ के नीचे एक पत्ते के आकार का, बड़ा 15-75 सेमी लंबा 'स्पेथ' भी होता है। फल पीले रंग के होते हैं।

प्राप्ति स्थान

बच के पौधे लगभग 2,000 मी ऊंचाई तक के क्षेत्र में, समस्त भारत में पाये जाते हैं। यह प्रायः हिमालय पर्वत के उत्तरी व पूर्वी भागों में, दलदल में अथवा अन्य नम स्थानों पर, अधिक होता है। मैसूर तथा कुछ स्थानों में इसकी खेती की गयी है।

औषधीय गुण

बच के प्रकंद सुखाकर औषधि में प्रयोग किये जाते हैं।

इसमें एक वाष्पशील (वोलेटाइल) तेल होता है जिसके कारण इसमें वायु या वात दूर करने का गुण होता है। यह पेट फूलने या अफारा अथवा उदरस्फीति की अवस्था में शांति पहुंचाती है और भूख बढ़ाती है। अधिक भोजन करने से या पेट में वायु हो जाने के कारण जो पीड़ा होती है, उसके शमन के लिए यह उपयोगी है। बच में सुगंधित तेल होते हैं। यह कफ निस्सारक भी है, अर्थात बलगम दूर करती है, तथा दमा रोग में शांति पहुंचाती है। बच में टैनीन भी होते हैं, इसलिए यह अतिसार एवं पेचिश, अर्थात आंव आने पर उपयोगी है। अधिक मात्रा में लेने से वमन होने का भय रहता है।

बच के पत्ते तथा प्रकंद पेय पदार्थों को सुगंधित करने के लिए, तथा कीटनाशक औषधियां बनाने के भी काम आते हैं। इसकी जड़ों को पीसकर कृमिनाशक औषधि भी बनाई जाती है।

बच का तेल तंतुओं के लिए बलकारक होता है। एल्कोहल में बनाये हुए बच के (सुगंधित वाष्पशील तत्वरहित) रस में पीड़ाहर तथा शमक गुण होते हैं, इस कारण बच मानसिक रोगों में प्रयोग होता है।

परीक्षणों में यह दिखाया गया है कि बच के प्रकंदों में कीटाणुओं की बढ़ोतरी रोकने वाले (एंटीबैक्टीरियल) तत्व होते हैं।

4. अडूसा

(वसाका)

वैज्ञानिक नाम : **आढाटोडा जेइलानिका** *(Adhatoda zeylanica* Medik) चित्र 2

(कुल – अकैंथेसिए)

अन्य नाम : **हिंदी** – बांसा, वासिका;
संस्कृत – वासक;
असमिया – बहाका, हेरबुक्षा, तीशाए;
कन्नड़ – आडुसोगे-गिडा;
गुजराती – अर्दूसी, अल्दूसो, धाबी-अरडूसी;
तमिल – अड़ादोरई, अड़ाथोरई;
तेलुगु – अड़ासरमु;
बंगला – वासक;
मराठी – अदूल्सा;
मलयालम – आडलोटकम।
(**दिल्ली** – पियाबांसा)

इस पौधे का वैज्ञानिक नाम, भारतीय नाम वासक पर आधारित है।

वर्णन

यह 1-2 मी ऊंचा सदाहरित पौधा होता है। इसकी शाखाएं हल्के पीले से रंग की अत्यंत विभाजित व घनी होती हैं। इसके पत्ते बड़े और लंबोतरे होते हैं। फूल सफेद होते हैं; उनकी पंखुड़ियों (दल) पर गुलाबी या बैंजनी रंग की लाइनें-सी होती हैं। फूल घनकी, छोटी स्पाइकों में लगते हैं। स्पाइकों के डंठल पत्तों से घने होते हैं। स्पाइकों पर पत्तों के आकार के छोटे छोटे सहपत्र होते हैं, जिन पर घनकी मोटी शिराएं (नसें) होती हैं। इन सहपत्रों के कारण अडूसा के पौधों को प्रायः दूर से ही पहचाना जा सकता है। अडूसा के फल एक छोटी - सी संपुटिका की भांति होते हैं, जिनमें 4 बीज होते हैं।

प्राप्ति-स्थान

अडूसा के पौधे भारत में सभी मैदानों तथा तलहटी क्षेत्रों में पाये जाते हैं। यह प्रायः नगरों

चित्र 2 – **अडूसा** (आढाटोडा जेइलानिका)

(आबादियों) के आसपास अधिक होते हैं।

औषधीय गुण

अडूसा के सुखाये हुए पत्ते औषधि में काम आते हैं।

पत्तों में वासीसीन नामक एल्केलाइड तथा वाष्पशील तेल होता है। अडूसा प्रधानतः अपने कफ निस्सारक गुण के कारण प्रसिद्ध है। इसका शरबत, रस या अर्क प्रयोग होता है। इसके सेवन से बलगम या कफ पतला होकर सुविधा से निकल जाता है। इस कारण यह खांसी, बलगम, दमा या श्वास नली की सूजन (ब्रोंकाइटिस) में लाभप्रद है।

अडूसा में कफ निस्सारक गुण इसलिए है क्योंकि यह श्वास नली की ग्रंथियों को उत्तेजित करती है; किंतु अधिक मात्रा में सेवन करने से यह हानिकारक है और इससे अत्यधिक व्याकुलता एवं वमन हो सकते हैं।

हाल ही में किये गये परीक्षणों में वासक की उपयोगिता की पुष्टि हुई है। जम्मू स्थित रीजनल रिसर्च लैबोरेटरी में यह खोज की गई है कि इससे वासीसीन नामक पदार्थ प्राप्त होता है जो प्रसव संबंधी रोगों में प्रयोग होता है तथा उसमें गर्भपात के गुण हैं।

अन्य उपयोग

अडूसा के पत्ते हरी खाद की तरह प्रयोग किये जाते हैं; इनसे एक पीला रंग भी प्राप्त होता है। क्योंकि पत्तों में कुछ एल्केलाइड होते हैं; इन पर फफूंदी तथा कीड़े अधिक नहीं लगते। इस कारण पत्ते फलों को पैक करने तथा उनके भंडारघर में बिछाने आदि के काम आते हैं। अडूसा के पत्तों में दुर्गंध होती है और प्रायः पशु उन्हें नहीं खाते। इस कारण जिन क्षेत्रों में कटी हुई भूमि के सुधार की योजनाएं चल रही हों, वहां पर लगाने के लिए यह पौधा उपयोगी है।

5. बेल

वैज्ञानिक नाम : **एग्ले मार्मेलॉस** [*Aegle marmelos* (L.) Correa]

रंगीन प्लेट XI

(कुल – रूटासिए)

अन्य नाम : **संस्कृत** – बिल्व, श्रीफल;
असमिया, बंगला, मराठी – बेल;
कन्नड़ – बिल्वपत्रे;
गुजराती – बीली;
तमिल – विल्वम;
तेलुगु – मारेडु;
मलयालम – विल्वम, कुवलम ।

वर्णन

यह एक मझोला पतझड़ी वृक्ष होता है । इसके पत्तों में 3 या 5 पत्रक होते हैं, पत्तों के कक्ष में बड़े कांटे होते हैं । बेल के फूल केलई या सफेद रंग के मधुर सुगंधित लगभग 2.5 सेमी व्यास के तथा छोटे गुच्छों में होते हैं । इसका फल गोल 8-20 सेमी व्यास का होता है । यह पहले हल्के हरे या केलई रंग का होता है, फिर भूरा-सा हो जाता है । फल का छिलका कठोर होता है । इसका गूदा नारंगी रंग का अत्यंत स्वादिष्ट एवं सुगंधित होता है ।

प्राप्ति-स्थान

बेल के वृक्ष भारत के सभी मैदानी तथा तलहटी क्षेत्रों में पाये जाते हैं, इनका रोपण भी किया जाता है ।

औषधीय गुण

बेल के पके अथवा अधपके फल औषधियों में काम आते हैं ।

फल का लेसदार गूदा (म्यूसीलेज) तथा उसके 'पेक्टीन' उपयोगी होते हैं । यह पुराने (जीर्ण) अतिसार, आंव अथवा पेचिश में लाभदायक है । विशेषकर जिन रोगियों को कभी दस्त

और कभी कब्ज का रोग होता हो, उनके लिए यह विशेषत: उपयोगी है।

पेचिश से मुक्त होने के पश्चात् रोगियों की अंतड़ियों को स्वस्थ करने के लिए बेल के गूदे का शरबत अच्छा होता है।

बेल के कच्चे या अधपके फल खाने से भूख एवं पाचन-शक्ति बढ़ती है।

परीक्षणों से यह सिद्ध होता है कि बेल के पत्तों, फलों तथा जड़ में एंटीबायोटिक तत्व होते हैं।

(बस्तर के आदिवासी ज्वर के रोगियों को बेल की जड़ की छाल का क्वाथ देते हैं।)

अन्य उपयोग

बेल की लकड़ी कोयला तथा 'प्रोड्यूसर गैस' बनाने के लिए उपयुक्त है।

बेल का गूदा गोंद की तरह प्रयोग किया जाता है, और वार्निश तथा लकड़ी जोड़ने के मसाले बनाने के काम आता है। कच्चे फलों के छिलकों से एक पीला रंग निकलता है।

6. कुलिंजन

(ग्रेटर-गलंगल)

वैज्ञानिक नाम : **आल्पीनिआ गलांगा** [*Alpinia galanga* (L.) Willd.]

(कुल – जींजीबेरेसिए)

अन्य नाम : **हिंदी** – सुगंध-बच;
संस्कृत – कुलंजन;
कन्नड़ – दुमपरास्मे;
तमिल – पेरारट्टई;
बंगला – कुलंजन;
मराठी – कोष्ठ-कुलिंजन ।

व्यापार कार्य में इस औषधि को गलंगल कहते हैं । यह नाम वैज्ञानिक नाम पर आधारित है । इसे बड़ा गलंगल भी कहते हैं क्योंकि इस वंश की ही एक दूसरी जाति को छोटा गलंगल कहते हैं ।

वर्णन

यह पौधा लगभग 2 मी तक ऊंचा हो जाता है । इसके पत्ते 70 सेमी तक लंबे तथा 15 सेमी चौड़े, ऊपर हरे व नीचे केलई से होते हैं । पत्तों के किनारे सफेद से होते हैं । मध्यशिरा (बीच की नस) बहुत मोटी होती है । फूल लगभग 3 सेमी लंबे केलई या सफेद रंग के लाल चित्तीदार होते हैं तथा 30 सेमी तक लंबे, घनके गुच्छों में लगते हैं । फूलों की पंखुड़ी पर सुंदर लाल लाइनें-सी होती हैं । फल नारंगी-लाल रंग के लगभग अंगूर जितने बड़े होते हैं । इसके प्रकंद सुगंधित होते हैं ।

प्राप्ति-स्थान

कुलिंजन हिमालय की पूर्वी पहाड़ियों में तथा पश्चिमी घाट में स्वाभाविक रूप से उगता है । देश के कई क्षेत्रों में इसका रोपण भी किया जाता है ।

औषधीय गुण

कुलिंजन के प्रकंद औषधि में काम आते हैं ।

यह औषधि गठिया, श्वास संबंधी विकार (विशेषकर बच्चों के) तथा खांसी, जुकाम में उपयोगी होती है।

कुलिंजन उदर के रोगों में भी लाभप्रद है। इसमें बलवर्धक, निसंक्रामक तथा दुर्गंध हरने के गुण भी बताये जाते हैं। कुलिंजन में अदरक जैसे उद्दीपक सुगंधित तत्व होते हैं।

अन्य जातियां

कुलंजन के वंश की एक दूसरी जाति — आल्पीनिआ ऑफ्फीसिनारुम (*Alpinia officinarum* Hance) है; इसे लेसर गलंगल कहते हैं। यह चीन देश का पौधा है। इससे प्राप्त औषधि में गंध और स्वाद अत्यंत तीव्र होते हैं। यह पौधा भारत में उगाया जा सकता है। हमारे देश के पूर्वी क्षेत्र इसके रोपण के लिए उपयुक्त बताये गये हैं। बंगाल तथा उत्तरी भारत में यह काफी पैदा किया जाता है।

7. छातिन

(डीटा-बार्क)

वैज्ञानिक नाम : **आल्स्टोनिया स्कोलारिस** [*Alstonia scholaris* (L.) Br.] चित्र 3

(कुल – अपोसाइनेसिए)

अन्य नाम : **संस्कृत** – सप्तवर्ण;
असमिया – छाइतेन;
उड़िया – छातियाना;
कन्नड़ – मद्दाले;
तमिल – पाला;
तेलुगु – पालैग;
बंगला – छात्तिम;
मराठी – सातविन, शैतान;
मलयालम – एड़िलमपाला;
अंग्रेजी – डेविल्स-ट्री।

इस वृक्ष को आल्स्टोनिआ नाम, एडिनबरा के एक वनस्पतिज्ञ प्रोफेसर एल्सटन (1685-1760 ई.) के सम्मान में दिया गया था। स्कोलारिस शब्द इसलिए दिया गया था क्योंकि पहले इसकी लकड़ी से विद्यार्थियों के लिखने के लिए तख्ती बनाई जाती थी।

वर्णन

छातिन का वृक्ष अत्यंत विशाल, लगभग 25 मी. तक ऊंचा, सदाहरित होता है। वृक्ष की शाखाओं, पत्तों आदि में सफेद दूध जैसा, किंतु कड़वा, रस होता है। वृक्ष की छाल खुरदरी व भूरी होती है। इसकी शाखाएं चक्करदार होती हैं, अर्थात एक ही स्थान पर कई कई निकलती हैं। वृक्ष के निचले भाग में तने के चारों ओर पुश्ते होते हैं अथवा तना काफी चौड़ा होता है। इसके पत्ते 10-20 सेमी लंबे, चीमड़, तथा एक गांठ पर 4-7 तक लगे होते हैं। इसके फूल सफेद या केलई रंग के, छोटे, अत्यंत सुगंधित, तथा शाखाओं के शीर्ष पर लगे छोटे छोटे गुच्छों में होते हैं। इसकी फली 30-60 सेमी लंबी, केवल 3-4 मिमी मोटी होती है, तथा दो दो एक साथ लगती हैं। ये बहुत भारी संख्या में आती हैं और इनसे लदा हुआ वृक्ष शोभनीय होता है।
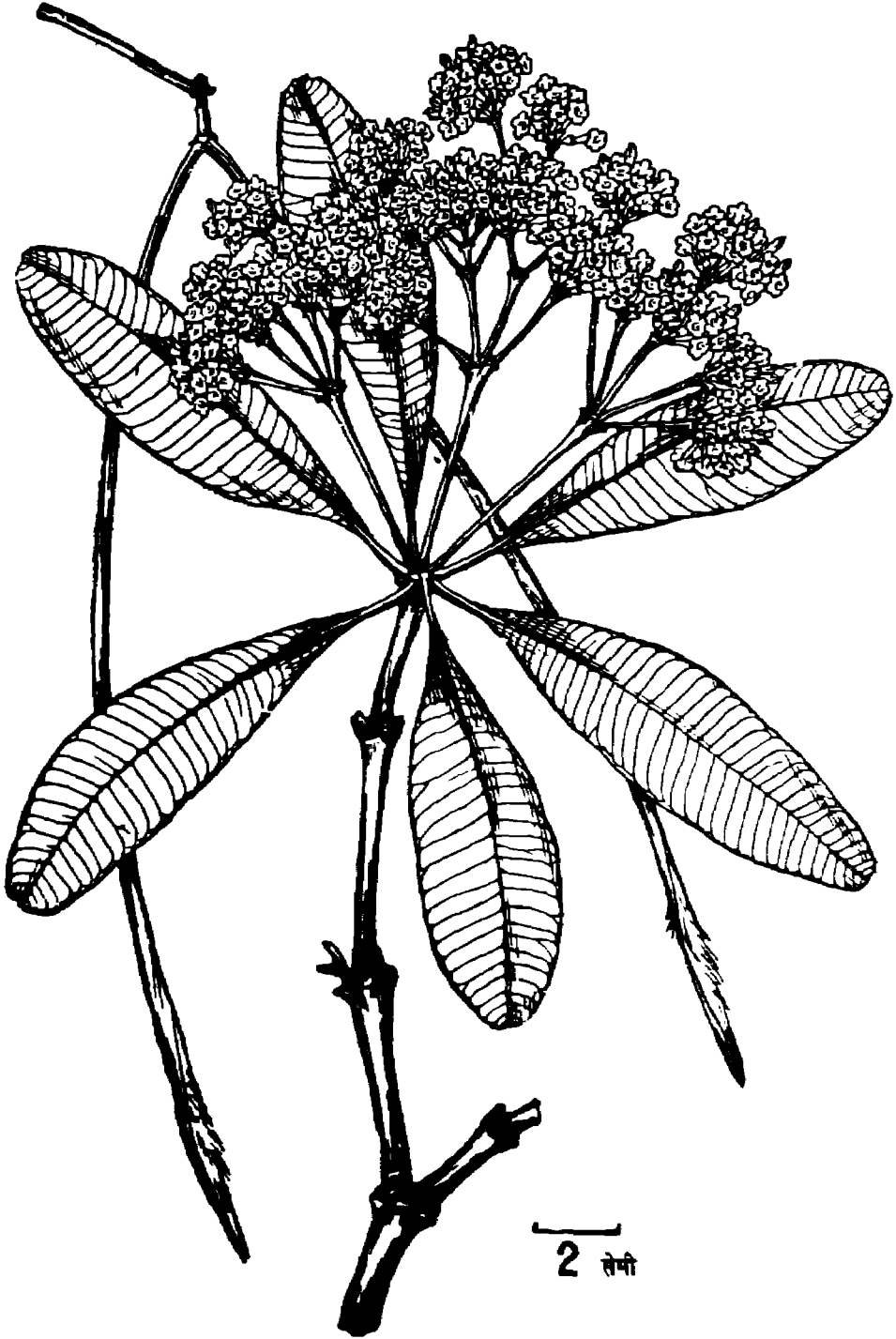
चित्र 3 – छातिन (आल्स्टोनिआ स्कोलेरिस)

प्राप्ति-स्थान

यह वृक्ष लगभग समस्त भारत में, विशेषकर अधिक वर्षा वाले क्षेत्रों में पाया जाता है।

औषधीय गुण

वृक्ष की छाल औषधि के काम आती है।

यह औषधि पुराने (जीर्ण) अतिसार एवं पेचिश में अत्यंत उपयोगी बताई जाती है। यह मलेरिया बुखार में उपयोगी है और ज्वर को भी धीरे धीरे उतार देती है। इसकी विशेषता यह है कि मलेरिया की अन्य औषधियों की भांति इसके सेवन से ज्वर उतरने से पहले न अधिक पसीना आता है, और न ही शरीर में अधिक दुर्बलता आती है। छातिन त्वचा के रोगों में भी लाभप्रद है।

यह औषधि रक्तचाप घटाने के लिए भी उपयोगी बताई गयी है। परीक्षणों से छातिन में एंटीबायोटिक तथा शरीर-क्रियात्मक (फिज़ियोलोजिकल एक्टीविटी) तत्वों की उपस्थिति सिद्ध नहीं हुई।

अन्य उपयोग

छातिन की लकड़ी मामूली फर्नीचर, पैकिंग के बक्से, चाय की पेटियां, पेंसिल व दियासलाई की सींक बनाने के काम आती है।

8. कालमेघ

वैज्ञानिक नाम : **एंड्रोग्राफिस पानीकुलाटा** *(Andrographis paniculata* Wall. ex Ness)

(कुल – अकैंथेसिए)

अन्य नाम : **हिंदी** – किरयात; कुलुफनाथ;
संस्कृत – किराता;
कन्नड़ – नेलबेवू, नीलबेरु;
गुजराती – लीलू-करियातू;
तमिल – नेलर्बेबू;
बंगला – अलुई, कालमेघ;
मराठी – ओलिकिरयात;
मलयालम – नेलवेपू।

वर्णन

यह एकवर्षी पौधा लगभग 1 मी तक ऊंचा हो जाता है। इसकी शाखाएं, जो चौकोर होती हैं, अनेक छोटी शाखाओं में विभाजित होकर चारों ओर फैल जाती हैं, और आसपास की झाड़ियों पर चढ़ जाती हैं। पत्ते लंबोतरे, लगभग 6-8 सेमी लंबे होते हैं। फूल गुलाबी रंग के लगभग 1 सेमी लंबे होते हैं तथा खुली, लंबी, फैली हुई शाखाओं पर लगते हैं। फल चिलगोजे जैसे, 1.22 सेमी लंबी संपुटिका होती हैं।

प्राप्ति-स्थान

कालमेघ का पौधा लगभग सारे भारत में पाया जाता है, यह विशेषकर मैदानी प्रदेशों में होता है।

औषधीय गुण

कालमेघ की जड़ को छोड़कर समूचा पौधा औषधि में काम आता है।

कालमेघ क्षुधावर्धक तथा पौष्टिक होता है । यह ज्वर, कृमि, पेचिश, दुर्बलता तथा पेट के अफारे में उपयोगी है । बच्चों के जिगर तथा अपच के रोग में यह लाभप्रद है । बंगाल में कालमेघ के पत्तों से एक घरेलू दवाई बनाते हैं, जिसे अलुई कहते हैं, यह शिशुओं को अपच आदि उदर रोगों में देते हैं ।

पहले ऐसा विचार था कि कालमेघ सर्प के काटने पर भी उपयोगी होता है, किंतु परीक्षणों में ऐसी धारणा निर्मूल सिद्ध हुई है । परीक्षणों में यह देखा गया है कि कालमेघ में एंटीबायोटिक तथा एंटीफाइड (अर्थात टाइफाइड ज्वर के तथा कुछ अन्य जीवाणुओं को रोकने वाले) तत्व हैं ।

(बस्तर के आदिवासी लोग कालमेघ के पौधों को सरसों के तेल में पीसकर खुजली पर लगाते हैं ।)

9. ईशरमूल

(इंडियन बर्थवर्ट)

वैज्ञानिक नाम : **आरीस्टोलोकिया ईंडिका** (*Aristolochia indica* L.)

(कुल – आरीस्टोलोकिएसिए)

अन्य नाम : **हिंदी** – ईश्वरी;
संस्कृत – ईश्वरीमूल;
कन्नड़ – ईश्वरीगिड़ा;
गुजराती – अर्कमूल;
तमिल – उटामणिएलाए;
तेलुगु – गुंटगंजीरा;
बंगला – ईशरमूल;
मराठी – सापसन।

वर्णन

यह एक आरोही पौधा होता है, इसकी नीचे वाली शाखाएं कड़ी व मोटी होती हैं, किंतु ऊपर पतली व मुलायम हो जाती हैं। इसकी मुख्य जड़ भी मोटी व कड़ी होती है। इसके सब पत्तों का आकार एक-सा नहीं होता, कुछ बहुत संकरे लंबोतरे, कुछ थोड़े अधिक चौड़े, और कुछ शीर्ष की ओर बहुत चौड़े होते हैं। उनके किनारे सीधे या लहरदार होते हैं। फूल छोटे, लगभग 3-4 सेमी लंबे, केलई रंग के, पत्तों के कक्ष में लगे, छोटे गुच्छों में आते हैं। फूलों का अग्र भाग गुलाबी या बैंजनी रंग का, तथा कोपाकार (भोंपू के आकार का) होता है। फल लगभग 5 सेमी लंबे होते हैं। इनका आकार कंडील जैसा बड़ा विचित्र होता है। पकने पर ये नीचे से 6 भागों में विभाजित होते जाते हैं, इनमें कई बीज होते हैं।

प्राप्ति-स्थान

ईशरमूल भारत के लगभग सभी मैदानी तथा तलहटी प्रदेशों में पाया जाता है। यह विशेषकर दक्षिण एवं पूर्वी भारत में होता है।

औषधीय गुण

ईशरमूल की शाखाएं व जड़ें, औषधि में काम आती हैं।

यह औषधि अत्यंत नियमित मात्रा में लेने पर ही उपयोगी है। थोड़ी मात्रा में सेवन करने से यह पाचन क्रिया बढ़ाती है तथा मासिक-धर्म ठीक करती है। यह पौष्टिक भी है। अधिक मात्रा में लेने से यह हानिकारक है। यह पाचन प्रणाली तथा गुर्दों में तीव्र उत्तेजना करके वेग के साथ वमन, मतली, गर्भपात, तथा अन्य विकार पैदा करती है। निर्धारित मात्रा में ईशरमूल उद्दीपक तथा ज्वरनाशक के रूप में प्रयोग होती है। रक्तचाप पर भी इसका कुछ प्रभाव बताते हैं।

अन्य जातियां

ईशरमूल के वंश की एक अन्य जाति कीड़ामारी (आरीस्टोलोकिआ ब्राक्टेओलाटा *Aristolochia bracteolata* Lamk. हिंदी – गंदन; संस्कृत– धूम्रपत्र; कन्नड़– कालागुर्की; तमिल– गाडियोरेगुर्पाअश्क) भारत के मैदानी प्रदेश में होती है, यह प्रधानतः रेगूर या काली मिट्टी वाले क्षेत्रों में उगती है। यह कृमि तथा फोड़े व जख्म के लिए उपयोगी है। इसीलिए इसे कीड़ामारी नाम भी दिया गया है।

10. किरमानी–अजवायन

(वर्म-सीड)

वैज्ञानिक नाम : **आर्टेमीसिआ मारीटिमा** *(Artemisia maritima* L.)

(कुल – आस्टेरेसिए)

अन्य नाम : **हिंदी** – छूहरी-अजमूद, किरमला;
संस्कृत – गदाधर;
कश्मीरी – मूर्नी;
पंजाबी – फिल्लौर;
मराठी – किरमानी-ओवा।

व्यापार-कार्य में इसको सैंटोनीना कहते हैं; यह नाम इस पौधे से प्राप्त कुछ तत्वों पर आधारित है।

वर्णन

यह लगभग 1 मी ऊंचा, बहुवर्षी, सुगंधित पौधा होता है। इसकी शाखाएं काफी संख्या में विभाजित होती हैं। पत्ते 2.5 सेमी लंबे, सफेद से होते हैं। शाखाओं के निचले भाग वाले पत्ते पतले पतले अनेक भाग में कटे होते हैं; प्रायः ऊपर के पत्ते कटे-फटे नहीं होते। फूल अत्यंत छोटे और छोटी पुष्पडोडियों में होते हैं। पुष्पडोडी पतली स्पाइकों में लगती हैं।

प्राप्ति-स्थान

किरमानी-अजवायन के पौधे उत्तरी भारत में कश्मीर से कुमाऊं तक लगभग 2,000 से 3,000 मी ऊंचाई वाले पर्वतों पर पाये जाते हैं।

औषधीय गुण

पौधे की नयी पत्तियों तथा पुष्पडोडियों को सुखाकर औषधि में प्रयोग करते हैं। ग्रीष्म ऋतु के आरंभ में अथवा वसंत ऋतु के अंत में, अर्थात जब पौधों पर पुष्प पूरी तरह पक न गये हों, उनके पत्ते तथा पुष्पडोडियां एकत्रित कर लेने चाहिए। इस समय इनमें सैंटोनीन की मात्रा अधिक होती है, और सैंटोनीन पर ही पौधे के औषधीय गुण निर्भर हैं। फूल विकसित होने पर

सैंटोनीन की मात्रा कम हो जाती है।

सैंटोनीन मुख्यतः कृमि नष्ट करने के लिए प्रसिद्ध है, यह विशेषकर थ्रेडवर्म तथा राउंडवर्म पर उपयोगी है। इसके सेवन से कृमि बड़ी अंतड़ी में पहुंच जाते हैं, वहां से किसी रेचक पदार्थ की सहायता से मल के साथ निकल जाते हैं। यह औषधि ज्वर तथा जलोदर में उपयोगी है, तथा उद्दीपक भी है।

अन्य जातियां

किरमानी-अजवायन के वंश की कुछ अन्य जातियां भी उपयोगी हैं।

नागदौना [आर्टेमीसिआ नीलगीरिका *Artemisia nilagirica* (Cl.) Pamp. संस्कृत–नागदमनी, तमिल–मचिपत्रि] भारत के पर्वतीय क्षेत्रों में पाया जाता है। यह कृमि, दमा आदि में उपयोगी है।

अफसंतीन (आर्टेमीसिआ अबसींथिउम *Artemisia absinthium* L.) कश्मीर में उगता है और पाचक तथा पौष्टिक होता है।

विशेषज्ञों का सुझाव है कि सैंटोनीन देने वाले पौधों की खेती भारत में और अधिक क्षेत्रों में की जाये। आर्टेमीसिआ वंश के पौधे हिमालय की ऊंची पहाड़ियों पर 2,000-3,000 मी ऊंचाई वाले स्थानों में, विशेषकर कश्मीर, पंजाब, हिमाचल-प्रदेश तथा उत्तर-प्रदेश में उगाये जा सकते हैं।

11. अंगूरशफ़ा

(बेल्लाडोन्ना)

वैज्ञानिक नाम : **आट्रोपा आकूमिनाटा** *(Atropa acuminata* Royle ex Lindley)

(कुल – सोलानेसिए)

अन्य नाम : **हिंदी, कश्मीरी** – संग-अंगूर।

व्यापार-कार्य में यह औषधि बेल्लाडोन्ना कहलाती है, यह नाम आट्रोपा वंश की एक यूरोपीय जाति आट्रोपा बेल्लाडोन्ना पर आधारित है; इस जाति का भारत में रोपण किया जाता है।

वर्णन

अंगूरशफ़ा का पौधा लगभग 60-90 सेमी ऊंचा, और बहुवर्षीय होता है। इसके पत्ते मटमैले-हरे रंग के 7-15 सेमी लंबे होते हैं। यह शीर्ष तथा आधार दोनों ओर संकरे होते हैं। फूल लगभग 2.5 सेमी लंबे, घंटाकार, पीले, भूरे से रंग के होते हैं और पत्तों के कक्ष में अकेले या दो साथ लगते हैं। फल सरस, 1.5 सेमी व्यास के, गहरे बैंजनी रंग के या काले होते हैं।

प्राप्ति-स्थान

यह पौधा कश्मीर में 2,000-3,000 मी ऊंचाई वाले स्थानों में होता है; इसकी खेती भी की जाती है।

औषधीय गुण

पौधे की जड़ों को छोड़कर अन्य सभी भाग सुखाकर औषधि में प्रयोग होते हैं; ये बेल्लाडोन्ना कहलाते हैं। कुल क्षारीय अंश पौधे के विकास की दशा पर निर्भर करता है। जब फूल खिले हुए हों उस समय कम तथा हरे फलों से युक्त होने पर बहुत अधिक होते हैं। जड़ें भी औषधि में शामिल की जाती हैं।

पत्तों तथा भूमि के ऊपर के अन्य अंगों से प्राप्त औषधि पसीना बनने की क्रिया को मंद करती है। यह आमाशय की तथा मुंह से लार पैदा करने वाली ग्रंथियों की क्रिया भी मंद करती है। यह पेट के मरोड़ तथा ऐंठन जैसी अन्य अवस्थाओं में शांति पहुंचाती है। इसमें तीव्र

एंटीस्पास्मोडिक गुण होते हैं; यह दमा तथा कुकुर खांसी में भी लाभप्रद है ।

पौधे की जड़ों से प्राप्त औषधि में भी वही गुण होते हैं, जो पत्तों और शाखाओं से प्राप्त औषधि में । किंतु जड़ों में कुछ विषैले तत्व बताये जाते हैं, और इसलिए जड़ों से प्राप्त औषधि सेवन के बजाय, गठिया, वातशूल (न्यूरेलजिआ) तथा सूजन आदि पर बाहरी लेप के काम आती है ।

अन्य जातियां

अंगूरशफ़ा के वंश की एक अन्य जाति आट्रोपा बेल्लाडोन्ना (*Atropa belladonna* L.) यूरोप में होती है; यह भारत के पर्वतीय प्रदेश में उगाई जाती है । इसकी जड़ें (जिन्हें *बेल्लाडोन्ना रेडिक्स* कहते हैं) तथा पत्ते (जिन्हें *बेल्लाडोन्ना फ़ोलिउम* कहते हैं) औषधि में प्रयोग होते हैं, ये पौष्टिक तथा शमक होते हैं । यह मरोड़ तथा ऐंठन में लाभप्रद है । यह (एट्रोपीन की भांति) आंखों की पुतली को चौड़ा करती है । बेल्लाडोन्ना से बनी अनेक औषधियां नेत्र-रोगों के लिए मरहम, आंख में डालने की दवा, आदि बनाने के काम आती हैं । विषपान के कारण हुए कुछ प्रकार के विकारों को दूर करने के लिए बेल्लाडोन्ना विषनाशक के रूप में प्रयोग किया जाता है ।

12. नीम

(मारगोसा)

वैज्ञानिक नाम : **आज़ाडीराक्टा ईंडिका** (*Azadirachta indica* A. Juss.) चित्र 4

(कुल – मीलिएसिए)

अन्य नाम : **संस्कृत** – निंब;
उड़िया, बंगला – नीम;
कन्नड़ – बेवू;
गुजराती – लींबड़ो;
तमिल, तेलुगु – वेप;
मराठी – निंब;
मलयालम – आर्य-वेप।

वर्णन

नीम भारत का सुपरिचित वृक्ष है। इसके पत्ते संयुक्त, पिच्छाकार होते हैं। उनमें अनेक छोटे पत्रक होते हैं। फूल छोटे, सफेद, सुगंधित होते हैं, और पत्तों के कक्ष में लंबे गुच्छों में लगते हैं। नीम के फल सरस, 1.2-2 सेमी लंबे होते हैं; कच्चे फल (निंबोरी) हरे, तथा पके फल पीले रंग के होते हैं। फलों में एक बीज होता है।

प्राप्ति-स्थान

नीम भारतीय प्रायद्वीप में स्वाभाविक रूप से उगता है; इसका रोपण तो देश के सभी भागों में किया जाता है। यह विशेषकर नगरों में तथा सड़कों के किनारे लगाया जाता है।

औषधीय गुण

नीम के पत्ते, तने और जड़ों की छाल औषधि के काम आते हैं।

छाल, रिक्त, पौष्टिक तथा स्तंभक होती है यह पार्यायिक ज्वरों (जैसे मलेरिया) में लाभप्रद है। यह ऐसे ज्वरों के क्रम को भंग कर देती है। यह त्वचा रोगों पर भी लाभदायक है।

नीम के पत्ते कड़वे होते हैं, और त्वचा रोगों तथा फोड़े फुंसी पर बहुत प्रयोग होते हैं। पत्तों के रस का सेवन भी लाभप्रद है।

चित्र 4 – नीम (आज़ाडीराक्टा ईंडिका)

परीक्षणों से सिद्ध हुआ है कि पत्तों और जड़ों में एंटीबायोटिक तत्व होते हैं, तथा वह त्वचा रोगों में अवश्य लाभप्रद हैं।

अन्य उपयोग

नीम की लकड़ी बहुत टिकाऊ होती है और इमारती काम के लिए उपयोगी है। यह कृषि में काम आने वाले औजार, तथा अन्य वस्तुएं बनाने के लिए उपयोगी है। बीज की खली तथा छाल से प्राप्त गोंद भी अनेक रूप में काम आते हैं।

13. ब्राह्मी

(बाकोपा)

वैज्ञानिक नाम : **बाकोपा मोनिएरी** (*Bacopa monnieri* L. Wettst.)
(अस्वीकृत नाम : **हेपेस्टिसमोन्नएरा, कूनेइफ़ोलिआ**)

(कुल – स्क्रोफुलेरिएसिए)

अन्य नाम : **हिंदी** – सफेद-चमनी;
संस्कृत – सौम्यलता;
गुजराती – जल-ब्राह्मी, जल-नेवरी, कड़वी-नेवरी, बाम;
तमिल – सांब्राणेएलाये;
तेलुगु – सांब्राणेअखलू;
मराठी – घोल;
मलयालम – वर्ण, नीरब्रह्मी;
अंग्रेजी – थाइम-लीव्ड-ग्राटिओला।

वर्णन

ब्राह्मी का पौधा छोटा होता है और भूमि पर फैलता है। इसकी शाखाएं और पत्ते मुलायम गूदेदार से होते हैं। पत्ते छोटे, प्रायः 1-2 सेमी लंबे, शीर्ष पर अधिक चौड़े होते हैं, उन पर सूक्ष्म काले दाग होते हैं। पत्तों में डंठल नहीं होते। शाखाओं की गांठों पर जड़ें निकल आती हैं। फूल पत्तों के कक्ष में, छोटे डंठलों पर लगते हैं; फूल हल्के नीले रंग के, लगभग 1 सेमी व्यास के होते हैं।

प्राप्ति-स्थान

यह पौधा नम भूमि में, जैसे कुएं, नदी नाले, खेत व तालाब आदि के पास अधिक होता है और समस्त भारत में पाया जाता है।

औषधीय गुण

ब्राह्मी का समूचा पौधा औषधि में काम आता है।

यह औषधि नाड़ियों के लिए पौष्टिक होती है। यह मिरगी, आक्षेप, बेहोशी व नाड़ियों

की दुर्बलता आदि रोगों में दी जाती है। यह कब्ज दूर करती है तथा मूत्रल है। पत्तों का रस बच्चों की खांसी या श्वास नली की सूजन में दिया जाता है। इसके सेवन से कै (वमन) हो जाती है, इसलिए शांति पड़ जाती है।

पत्तों के रस को पेट्रोल में मिलाकर गठिया के दर्द में लेप करते हैं। जिन बच्चों को खांसी हो, उनकी छाती पर, ब्राह्मी के समूचे पौधे को उबालकर, उसकी पुलटिस लगाई जाती है। ब्राह्मी में रक्त शुद्ध करने के भी गुण बताये जाते हैं।

ब्राह्मी में ब्रह्मीन नामक एल्केलाइड होता है, जो हृदय के लिए पौष्टिक होता है।

ब्राह्मी के एल्कोहल में बने अर्क का प्रभाव जानने के लिए जानवरों पर कुछ परीक्षण किये गये हैं। इसमें शमक अथवा स्वापक गुण विद्यमान हैं।

14 रसौत

(बेर्बेरिस, इंडियन-बार्बेरी)

वैज्ञानिक नाम : **बेर्बेरिस आरिस्टाटा** *(Berberis aristata* DC.) चित्र 5

(कुल – बेर्बेरिडेसिए)

अन्य नाम : **हिंदी** – किंगोड़ा, किलमोरा, दारुहल्दी;
संस्कृत – दारु-हरिद्र;
कश्मीरी – रसवत;
तमिल – मरामंजल;
पंजाबी – कशमल;
बंगला – दारु-हरिद्र;
मराठी – दारु-हलद;
मलयालम – मरादरिशिना।

वर्णन

यह एक बड़ा झाड़ीनुमा, कंटीला पौधा होता है। इसकी लकड़ी पीली होती है और शाखाएं सफेद या पीली भूरी-सी होती हैं। पत्ते प्रायः लंबे, सीधे या शाखित कांटों के कक्ष में निकलते हैं और एक गांठ पर कई होते हैं। पत्ते चीमड़, 8-10 सेमी लंबे, शीर्ष पर अधिक चौड़े होते हैं, उनके किनारे प्रायः नुकीले, दंतुर होते हैं। पत्तों का रंग ऊपर हरा और नीचे केलई-सा होता है। उन पर पतली शिराएं होती हैं। रसौत के फूल अत्यंत छोटे, पीले रंग के होते हैं, वह 5-7 सेमी लंबे गुच्छों में लगते हैं। फल सरस, अंडाकार, गहरे नीले या बैंजनी रंग के होते हैं।

प्राप्ति-स्थान

रसौत के पौधे हिमालय पर्वत के 2,000-3,000 मी ऊंचाई के क्षेत्रों में पाये जाते हैं। ये दक्षिण में नीलगिरी पर्वत पर होते हैं।

औषधीय गुण

रसौत नामक औषधि इस पौधे की तथा इस वंश की कुछ अन्य जातियों (जैसे *बेर्बेरिस*
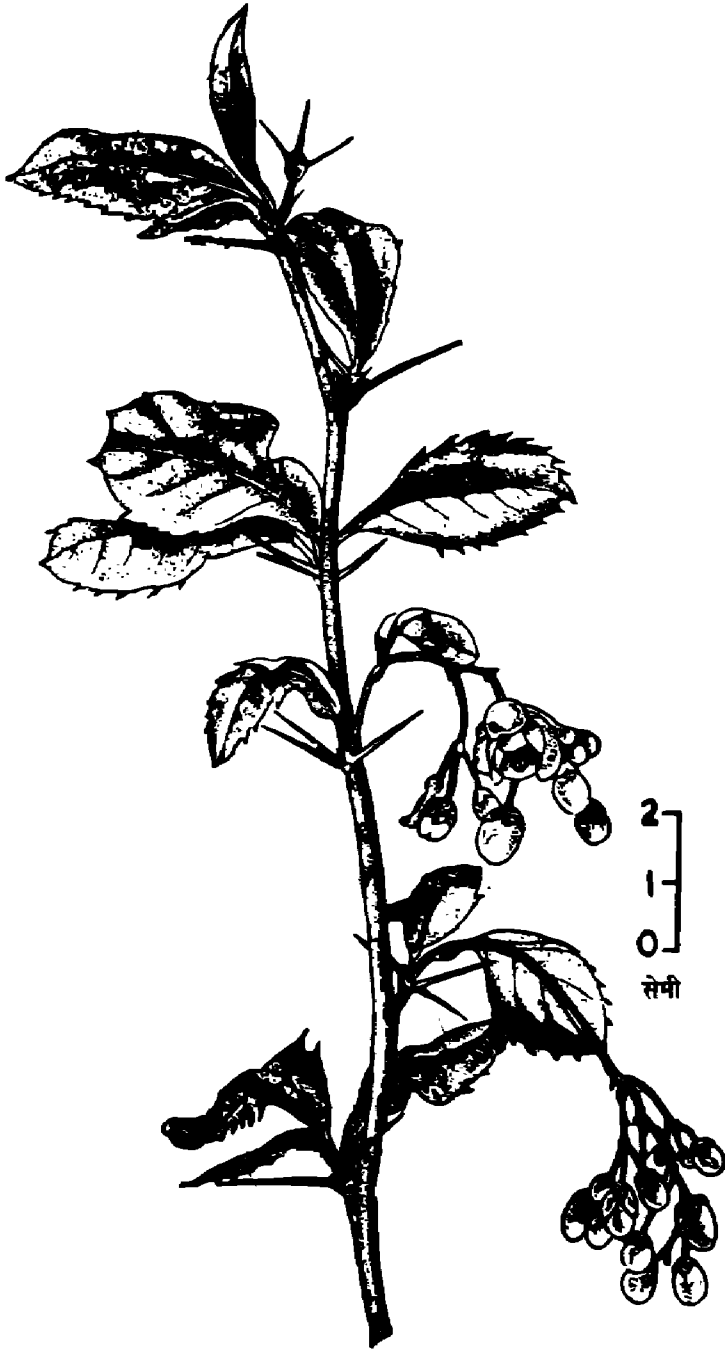
चित्र 5 – रसौत (बेर्बोरिस आरिस्टाटा)

चित्र 6 – रसौत (बेर्बेरिस लीसिअम)

एशिआटिका तथा *बेर्बेरिस लीसिउम* के पौधों की जड़ों से प्राप्त होती है। (चित्र-6)

रसौत की जड़ों से 'बर्बेरीन' नामक एल्केलाइड प्राप्त होता है। रसौत की औषधि बनाने के लिए पौधों के नीचे वाली शाखाओं और जड़ों के टुकड़े तथा जड़ों की छाल को पानी में उबाला जाता है। इस पानी को छानकर अर्ध ठोस (सेमीसालिड) अवस्था तक सुखाते हैं। यही द्रव्य रसौत कहलाता है। यह जल में घुल सकता है।

रसौत को घी और फिटकरी में अथवा अफीम और नींबू के रस में मिलाकर आंखों के पपोटों पर लगाना नेत्र रोगों में लाभदायक है। परीक्षणों द्वारा यह यह दिखाया गया है कि रसौत फोड़ों व जख्मों पर भी लाभदायक है। रसौत न केवल बाहर से लगाई जाती है किंतु फोड़ों के आसपास की त्वचा में रसौत के इंजेक्शन भी लगाये जाते हैं।

रसौत ज्वरनाशक, मृदु - रेचक तथा पौष्टिक भी है। यह पाचन के विकारों को दूर करती है। खरगोशों पर किये गये कुछ परीक्षणों से यह सिद्ध कर दिया गया है कि हैजा तथा तीव्र अतिसार में रसौत लाभ करती है। बहुत समय तक रसौत मलेरिया ज्वर में भी दी जाती थी किंतु अब यह सिद्ध हुआ है कि ज्वर उतारने में तो यह लाभदायक नहीं है, वरन केवल मलेरिया ज्वर की शीघ्र पहचान कराने में सहायक होती है। परीक्षणों द्वारा दिखाया गया है कि रसौत श्वास एवं हृदय गति की क्रिया को मंद करती है। इस औषधि में क्षय रोग के जीवाणुओं को रोकने के भी गुण बताये गये हैं।

अन्य उपयोग

रसौत (*बेर्बेरिस आरिस्टाटा*) की जड़ों व शाखाओं से एक पीला रंग प्राप्त होता है, जो चमड़ा कमाने तथा रंगने के काम आता है।

15. पुनर्नवा

वैज्ञानिक नाम : **बोएर्हाविआ डीफ्फूजा** (*Boerhavia diffusa* L.)

(कुल – निक्टाजिनेसिए)

अन्य नाम : **हिंदी** – विषखोपरा, सांठी, सुर्वरी;
संस्कृत – रक्तकांदा, पुनर्नवा;
कन्नड़ – अडकपुट्टनगिड़ा;
गुजराती – मोटो-सातोड़ो, नाहनो-वसेड़ो, झींड़को-वसेड़ो;
तमिल – मुक्कारट्टेई;
तेलुगु – अटकी, अटिक-ममीड़ी;
बंगला – पुनर्नवा;
मराठी – तंबाड़ी-वसु;
मलयालम – तविड़ाम;
अंग्रेजी – हॉगवीड, हॉर्स-पर्सलेन।
(**मध्य प्रदेश** – खोड़िया, पथरचट्टा।)

इस पौधे के अधिकांश स्थानीय नाम तथा व्यापार का नाम पुनर्नवा, संस्कृत नाम पर आधारित हैं।

वर्णन

यह पौधा प्राय: भूमि पर फैलता है अथवा अन्य पौधों या झाड़ियों का सहारा पाकर ऊंचा भी चढ़ जाता है। इसकी शाखाएं विभाजित तथा फैली हुई होती हैं। प्रत्येक गांठ पर दो पत्ते होते हैं। दोनों मंडलाकार होते हैं, किंतु एक छोटा, लगभग 1.5-2 सेमी व्यास का और दूसरा बड़ा, लगभग 2.5-4 सेमी व्यास का होता है। पत्तों के आधार हृदयाकार होते हैं; पत्ते नीचे सफेद और ऊपर हरे होते हैं। फूल अत्यंत छोटे, लाल रंग के होते हैं। वह पत्तों के कक्ष से निकले, लंबे, डंठलों पर, छोटे गुच्छों में लगते हैं। फलों पर महीन धारियां और ग्रंथियां होती हैं।

प्राप्ति-स्थान

पुनर्नवा लगभग समस्त भारत में पाया जाता है।

औषधीय गुण

पौधे के सभी भाग, विशेषकर जड़ें, पुनर्नवा नामक औषधि में काम आते हैं।

इस औषधि में पुनर्नवीन नामक एल्केलाइड होता है। यह औषधि मुख्यतया मूत्रविचेरक के रूप में भी प्रयोग होती है और जलोदर, पीलिया व सूजाक में दी जाती है। यह रेचक भी है। थोड़ी मात्रा में सेवन करने से कै हो जाती है। जानवरों पर किये गये परीक्षणों से इस औषधि का मूत्रल गुण सिद्ध हुआ है।

16. पलास

(बूटेआ)

वैज्ञानिक नाम : **बूटेआ मोनोस्पेर्मा** [*Butea monosperma* (Lamk.) Taub.]
(अस्वीकृत नाम : **बूटेआफ्रोंडोसा**)

(कुल – पेपीलिओनेसिए)

अन्य नाम : **हिंदी** – ढाक, टेसू;
संस्कृत – पलाश;
उर्दू – पलाश-पापड़ा;
कन्नड़ – मुत्तुंकदगिडा;
गुजराती – खाकारो, केसुड़ानो-झाड़;
तमिल – पलासु;
तेलुगु – पलासमू;
बंगला – पलाश;
अंग्रेजी – फ्लेम ऑव दि फारेस्ट।
(अजमेर-मेरवाड़ा – चौर)

अंग्रेजी में इस वृक्ष को फ्लेम-ऑव दि-फोरेस्ट (Flame of the Forest) कहते हैं। यह नाम इसलिए दिया गया है कि पुष्पन के समय लाल-नारंगी फूलों से लदे इसके वृक्ष जंगल में आग की लपटों जैसे दिखते हैं।

वर्णन

पलास भारत का सुपरिचित वृक्ष है। इसके लाल-नारंगी रंग के फूलों से लदे वृक्ष बहुत सुंदर दिखाई देते हैं। यह एक मझोला पतझड़ी वृक्ष होता है। इसके पत्तों में तीन पत्रक होते हैं। नीचे वाले दो पत्रक 8-12 सेमी व्यास के होते हैं, तीसरा पत्रक बड़ा होता है। पत्रकों की नीचे की सतह मुलायम रोएंदार होती है, और उस पर मोटी शिराएं होती हैं। पत्ते शीतकाल में झड़ जाते हैं, और फरवरी-मार्च मास के लगभग, जब शाखाएं पर्णहीन होती हैं, वृक्ष पर फूल आने लगते हैं। फूल छोटे, घनके गुच्छों में आते हैं, शीघ्र ही सारा वृक्ष नारंगी फूलों से लद जाता है। पलास के फल चपटी फली जैसे होते हैं, फली में एक बीज होता है। वृक्ष का वैज्ञानिक नाम मोनोस्पर्मा एक बीज के कारण ही दिया गया है।

प्राप्ति-स्थान

पलास का वृक्ष समस्त भारत में होता है; यह मुख्यतः मध्य तथा पश्चिम भारत के पतझड़ी या मिश्रित वनों में पाया जाता है। यह प्रायः मैदानी या निचली तलहटियों में अधिक होता है।

औषधीय गुण

पलास से प्राप्त लाल गोंद, जिसे बंगाल-किनो या बूटेआ-गम कहते हैं, तथा इस वृक्ष के बीज औषधि में काम आते हैं।

गोंद में टैनीन होते हैं, और यह अतिसार में अत्यंत लाभप्रद है। बीज में कृमिनाशक गुण हैं, वह राउंडवर्म तथा टेपवर्म के इलाज में प्रयोग होते हैं। राउंडवर्म पर उनका प्रभाव परीक्षणों द्वारा भी सिद्ध किया गया है। पलास के बीज सैंटोनीना के स्थान पर भी प्रयोग किये जा सकते हैं। बीज नींबू के रस में पीसकर खुजली (धोबी के धुले कपड़े पहनने से कभी कभी होने वाली खुजली) पर लगाते हैं। बीज दाद पर भी उपयोगी हैं। पलास की जड़ों की छाल का रक्तचाप पर कुछ प्रभाव बताते हैं।

अन्य उपयोग

पलास लाख के कीड़े बढ़ाने के लिए बहुत उपयुक्त है। पलास के फूलों से पीला रंग निकलता है। लकड़ी पानी के अंदर भी शीघ्र नहीं गलती, इसलिए कुओं पर रखने की चौखट व पानी खींचने के बर्तन आदि बनाने के काम आती है। यह इमारती काम में तथा ईंधन की तरह भी प्रयोग होती है। पत्ते बड़ी मात्रा में पत्तल व दौने बनाने के काम आते हैं। वे चारे के लिए भी उपयोगी हैं।

अन्य जाति

पलासलता (बूटेआ सूपेर्बा *Butea superba* Roxb.) एक मोटी लता होती है। इसके पत्तों का रस गर्मियों में बच्चों के फोड़े फुंसियों पर उपयोगी होता है।

17. अमलतास

(कास्सिआ)

वैज्ञानिक नाम : **कास्सिआ फीस्टुला** *(Cassia fistula* L.) चित्र 7

(कुल – सीसलपीनिएसिए)

अन्य नाम : **हिंदी** – किराल, किलवली, सिनार;
संस्कृत – सुवर्णका;
कन्नड़ – कक्केगिडा;
गुजराती – गरमाड़ो;
तमिल – कोन्नेई, अलस;
तेलुगु – रेला;
बंगला – सोनाली, बंदरलाठी, सोंदाल;
मराठी – बेहावा, जंबा;
मलयालम – कृतमलम कोन्नेई;
अंग्रेजी – इंडियन-लैबर्नम।

अमलतास के वैज्ञानिक नाम में फीस्टुला शब्द का संबंध इस वृक्ष के फलों की बांसुरी जैसी आकृति से है।

वर्णन

यह एक छोटा या मझोली ऊंचाई का वृक्ष होता है। इसके पत्ते संयुक्त होते हैं। पत्रक बड़े, 5-10 सेमी लंबे, चमकीले, गहरे-हरे रंग के होते हैं। अमलतास के फूल लगभग 3.5-5 सेमी व्यास के, पीले रंग के, और बहुत बड़े लटकते हुए गुच्छों में होते हैं। फल 50-60 सेमी लंबे, बांसुरी की-सी आकृति के, काले या चमकीले गहरे कत्थई रंग के होते हैं। जब वृक्ष फूलता है तो बहुत सुंदर दिखाई देता है, और वन में दूर से ही पहचाना जा सकता है। फल आने की अवस्था में वृक्ष शोभनीय होता है। अमलतास के पत्ते ग्रीष्म ऋतु के आरंभ में, अर्थात मार्च से मई तक, गिर जाते हैं, किंतु इस समय वृक्ष फूलों से भर जाता है, तथा समूचा वृक्ष दूर से पीला दिखता है।
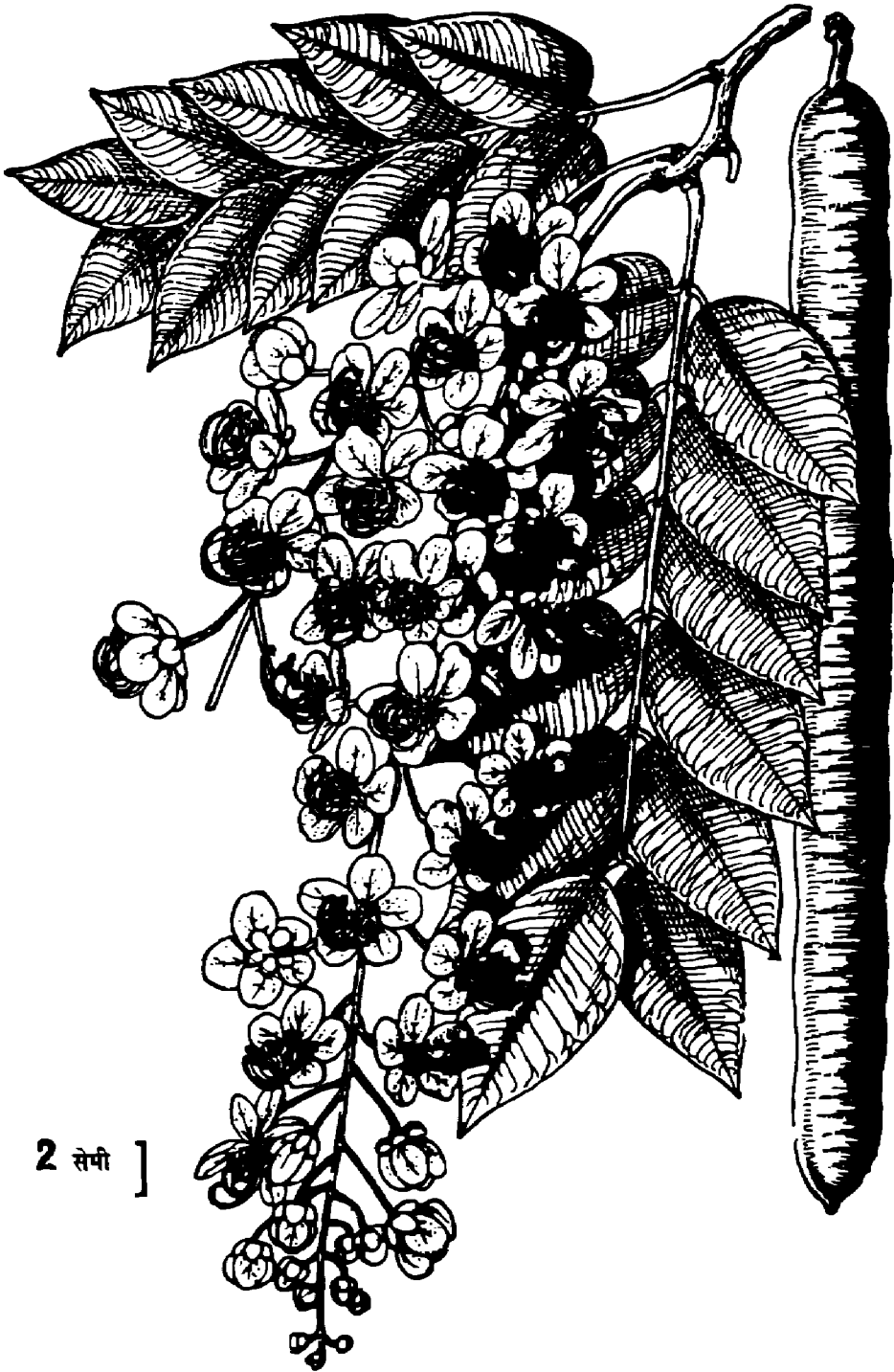
चित्र 7 – **अमलतास** (कास्सिआ फीस्टुला)

प्राप्ति-स्थान

अमलतास 1,500 मी ऊंचाई तक के स्थानों में लगभग समस्त भारत में ही मिलता है। यह नम या सदाहरित वनों में अधिक होता है। सड़कों के किनारे तथा उद्यान में लगाने के लिए अमलतास का वृक्ष बहुत उपयुक्त समझा जाता है, और प्राय: ही लगाया जाता है।

औषधीय गुण

यद्यपि इस वृक्ष के सभी भागों में कुछ न कुछ औषधीय गुण बताये जाते हैं, परंतु इसके फल बहुत उपयोगी हैं और भारत के मान्य औषध कोश में भी उनका उल्लेख है। फल का गूदा, जिसे कास्सिआ-पल्प कहते हैं – प्रख्यात रेचक औषधि है। अधिक मात्रा में सेवन करने से यह हानिकारक है, और अत्यधिक पतले दस्त, मतली तथा उदरशूल हो सकते हैं। प्राय: अकेली इस औषधि का सेवन नहीं किया जाता, इसको सनाय के पत्तों में मिलाकर लेते हैं।

अन्य उपयोग

अमलतास की छाल को सुमारी कहते हैं। इसमें टैनीन प्रचुर मात्रा में होते हैं। इसकी लकड़ी मजबूत व कड़ी होती है और मकान, पुल, तथा कृषि संबंधी नाना प्रकार के औजार बनाने के काम आती है।

अन्य जातियां

अमलतास के वंश की एक अन्य जाति सनाय (कास्सिआ आंगुस्टीफोलियो *Cassia angustifolia* Vahla; अंग्रेजी– इंडियन-सेन्ना; टिनेवेली सेन्ना, संस्कृत – भूपझ, मलयालम - नीलावाक) एक छोटी झाड़ी होती है; यह अरब व सोमालीलैंड का पौधा है, और दक्षिण भारत आदि में इसका रोपण किया गया है। इसके पत्ते तथा फल रेचक और कब्ज के पुराने रोगियों के लिए उपयोगी हैं। यदि बच्चों को अपना दूध पिलानेवाली स्त्रियां इसका सेवन करें तो दूध में रेचक तत्व आ जाते हैं।

इस वंश की कुछ अन्य जातियां भी औषधि में काम आती हैं।

18. सदाबहार

(कथारांथुस)

वैज्ञानिक नाम : **कथारांथुस राउज** [*Catharanthus roseus* (L.) G. Don.]
(अस्वीकृत नाम : **विंका रोज़ेआ**)

(कुल – अपोसाइनेसिए)

अन्य नाम : **बंगला** – नयनतारा, गुलफेरिंगी;
मलयालम – उषामालारी;
मराठी – सदाफल;
उड़िया – अपंस्काति;
तमिल – सुदुकाडु मल्लिकाइ;
तेलुगु – बिल्लागेन्नेरु;
पंजाबी – रतनजीत

वर्णन

यह लगभग 1 मी तक ऊंचा सीधा खड़ा रहने वाला पौधा है जिसकी पत्तियां अंडाकार होती हैं तथा एक दूसरे के विपरीत होती हैं। फूल 2 या 3 गुच्छों में लगते हैं। फूलों की पंखुड़ियों का रंग सफेद या लाल गुलाबी, एक विशेष प्रकार की पंखुड़ियों का रंग सफेद तथा उनके निचले भाग पर गुलाबी या लाल रेशे होते हैं। फल बहुबीजीय, पुटिकाकार होते हैं।

प्राप्ति-स्थान

इस पौधे की जन्मभूमि मेडागास्कर है पर अब यह दोनों गोलार्धों के उष्णकटिबंधीय क्षेत्रों में प्राकृतिक रूप से पाया जाता है। अक्सर इसकी खेती की जाती है और जल्दी ही यह फैलने लगता है।

औषधीय गुण

इस पौधे की जड़ें औषधियुक्त होती हैं। ये विषाक्त मानी जाती हैं तथा साथ ही ये क्षुधावर्धक भी होती हैं। हाल की खोजों से पता चला है कि ये बहुमूल्य एल्केलाइडों की स्रोत हैं जो

राउवोल्फिया जाति के पौधों से प्राप्त एल्केलाइडों की तरह होता है। सदाबहार की जड़ों में सर्पगंधा से अधिक आज्मालाइसाइन तथा सर्पेंटाइन मिलता है; उनमें सर्पेपाइन भी पाया जाता है।

इसके एल्केलाइडों में उपशामक गुण काफी अधिक मात्रा में होता है। पशुओं के साथ किए गए प्रयोगों से पता चलता है कि सदाबहार के कुछ क्वाथ ल्यूकेमिया में लाभ पहुंचाते हैं।

अन्य उपयोग

यह एक बहुत सुंदर बागीचीय पौधा है जो साल-भर फूलों से लदा रहता है, इसीलिए इसे सदाबहार कहते हैं। यह पौधा काफी सुगठित रहता है तथा सजावटी बागवानी में काफी लोकप्रिय है।

अन्य जाति

कथारांथुस पुसिलस (अप्रसिद्ध नाम– विंसा, पुसिला, लोच्नेरा पुसिला; संस्कृत– शंखफली; तमिल– मिलागाई पूंडु) अपतृण के रूप में पाया जाता है तथा कटिवात में उपयोगी बताया जाता है।

19. ब्रह्ममंडूकी

(सेंटेल्ला)

वैज्ञानिक नाम : **सेंटेल्ला एशिआटिका** [*Centella asiatica* (L.) Urban]
(अस्वीकृत नाम : **हीड्रोकोटीले एशिआटिका)**

(कुल – अम्बेलीफेरिए)

अन्य नाम : **हिंदी** – ब्राह्मी;
संस्कृत – मंडूक-पर्णी;
कन्नड़ – वंदेलगा;
गुजराती – बर्मी;
तमिल – वेल्लारि-एलाये;
तेलुगु – बोखुड्डू, नाएले-टांगडू-अखलू;
पंजाबी – ब्राह्मी-बूटी;
बंगला – ठानखुरिया;
मराठी – ब्राह्मी;
अंग्रेजी – इंडियन-पेनीवर्ट।
(नागा-क्षेत्र, असम – अघिउये;
सिल्चर – तूनिमानकोणि;
सिक्किम – गोरतापरी)

इस पौधे का संस्कृत नाम मंडूकपर्णी पौधे के पत्तों के आकार पर आधारित है।

वर्णन

यह पौधा भूमि पर फैलता है, तथा इसकी विसर्पी शाखाओं की गांठों पर भी जड़ें फूट आती हैं। पत्ते छोटे, 2-4 सेमी व्यास के, या थोड़ा अधिक, वर्तुल अथवा वृक्काकार होते हैं। उनके किनारे दंतुर होते हैं। फूल छोटे, गुलाबी या लाल, 3-6 के गुच्छों में होते हैं। फल भी छोटे, जौ के दाने जैसे होते हैं और उन पर 7-9 उभरी हुए धारियां-सी होती हैं।

प्राप्ति-स्थान

यह पौधा समस्त भारत में नम स्थानों में होता है और नदी, नाले तालाब के किनारे, या सिंचे

हुए खेत तथा लॉन में प्राय: ही उग आता है ।

औषधीय गुण

ब्राह्मी के पौधे के ताजे पत्तों और टहनियों को तोड़कर सुखा लेते हैं, विशेषकर यही औषधि में काम आते हैं । जड़ और बीज भी प्रयोग होते हैं ।

ब्राह्मी के पत्ते अथवा समूचा पौधा पानी में उबालकर उसका क्वाथ कुष्ठ रोग में देते हैं । ब्राह्मी में 'एशियाटिकोसाइड' नामक तत्व होता है, इसके ही कारण इस पौधे को कुष्ठ रोग में लाभप्रद बताते हैं । जानवरों पर जो परीक्षण किये गये हैं, उनसे यह सिद्ध हुआ है कि ब्राह्मी में त्वचा, बाल तथा नाखूनों की बढ़ोतरी को तीव्र करने के गुण अवश्य हैं ।

यह पौधा कुछ प्रकार के क्षय रोग में, मस्तिष्क के लिए, तथा शरीर की भिन्न क्रियाओं को संतुलित करने के लिए भी उपयोगी बताया गया है ।

20. सोमराजि

(सेंट्राथेरुम)

वैज्ञानिक नाम : **सैंट्राथेरुम आंथेलमींटिकुम** [*Centratherum anthelminticum* (Willd.) Kuntze]
(अस्वीकृत नाम : **वेर्नोनिआ आंथेलमींटिका**)

(कुल – कम्पोसिटए)

अन्य नाम : **हिंदी** – कालीजीरी, बनजीरा;
संस्कृत – सोमराजि;
उर्दू – जंगली जीरी;
कन्नड़ – काडु जीरिगे;
गुजराती – काली जीरी;
तमिल – कट्टु क्षीरगम;
तेलुगु – अदविजीलकर;
पंजाबी, बंगला – सोमराज;
मराठी – कालेन जीरी;
मलयालम – कट्टुजीरकम;
गढ़वाली – काला जीरा।

वैज्ञानिक नाम में आंथेलमींटिकुम शब्द का अर्थ है, कृमिनाशक; यह इस औषधि के गुण पर आधारित है।

वर्णन

यह प्रायः लंबा, सीधा बूटा होता है; इसके तने एवं पत्तों पर सूक्ष्म रोम होते हैं। पत्ते 6-10 सेमी लंबे होते हैं। उनके किनारे दंतुर और आधार संकरे होते हैं। पुष्प छोटे 1.5-2.5 सेमी व्यास के गुच्छों में लगते हैं, जिन्हें केपीटुलम कहते हैं। प्रत्येक केपीटुलम में 30-40 गुलाबी रंग के फूल होते हैं। कई कई केपीटुलम एक साथ होते हैं। फल जिन्हें 'एकीन' कहते हैं, छोटे 4.5-6 मिमी लंबे, सौंफ के दाने से, किंतु रोमिल होते हैं। उन पर 10 उभरी हुई धारियां होती हैं। 'एकीन' के शीर्ष पर गुलाबी या लाल रोमगुच्छ होता है।

प्राप्ति-स्थान

यह पौधा 1,500 मी ऊंचाई तक के स्थानों में लगभग समस्त भारत में पाया जाता है। यह आबादियों या बस्तियों के आसपास, बेकार स्थानों में प्राय: ही उग आता है।

औषधीय गुण

पौधे के ताजे बीज (जितने ताजे हो सकें) लेकर सुखा लिये जाते हैं। यही सोमराजि औषधि है।

जैसा कि पौधे के वैज्ञानिक नाम आंथेलमींटिकुम से स्पष्ट है, सोमराजि एक उपयोगी कृमिनाशक औषधि है। यह थ्रेडवर्म नामक कृमि पर उपयोगी है। पुरानी पुस्तकों में इस औषधि में उत्तेजक, एंटीसेप्टिक और मूत्रल गुण भी बताये गये हैं, किंतु परीक्षणों द्वारा यह सिद्ध नहीं हो सका है। थ्रैडवर्म पर यह उपयोगी है, अस्पतालों में किये गये परीक्षणों से भी इसकी पुष्टि हुई है।

I. **रोशा-घास** (सींबोपोगोन मार्टिनी)
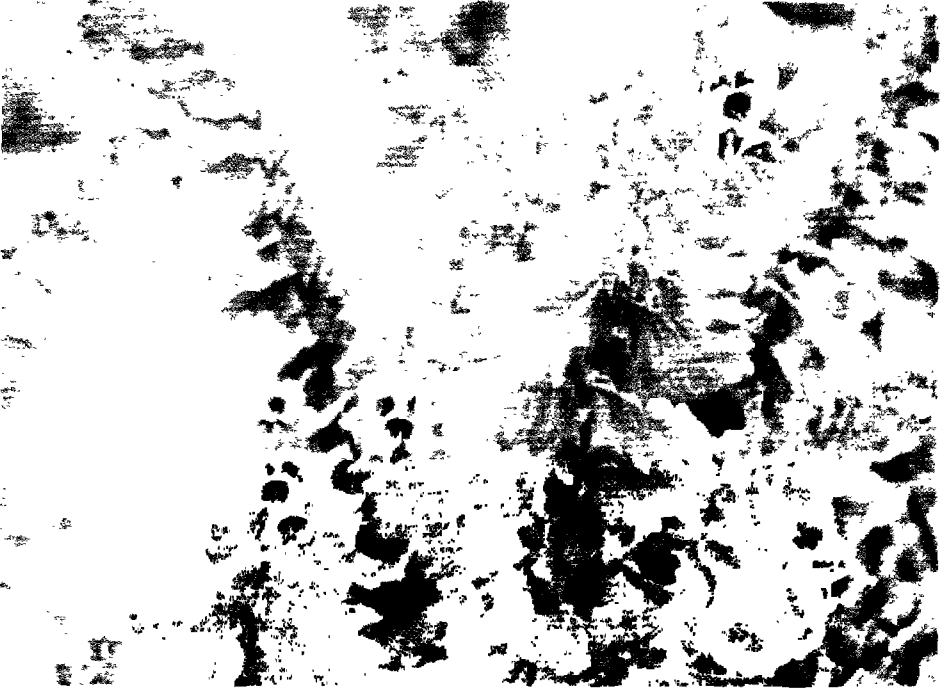
II. **खुरासानी-अजवायन** (हिओस्सिआमुस नीगेर)

III. **कपूर-तुलसी** (आसीमुम किलिमंडशारिकुम)

IV. **इसपगोल** (प्लांटागो ओवाटा)

V. **बाबची** (सोरालेआ कोरीलीफोलिया)

VI. धतूरा (डाटुरा स्ट्रामोनिउम)

VII. **कटेरी** (सोलानुम एवीकुलावे)
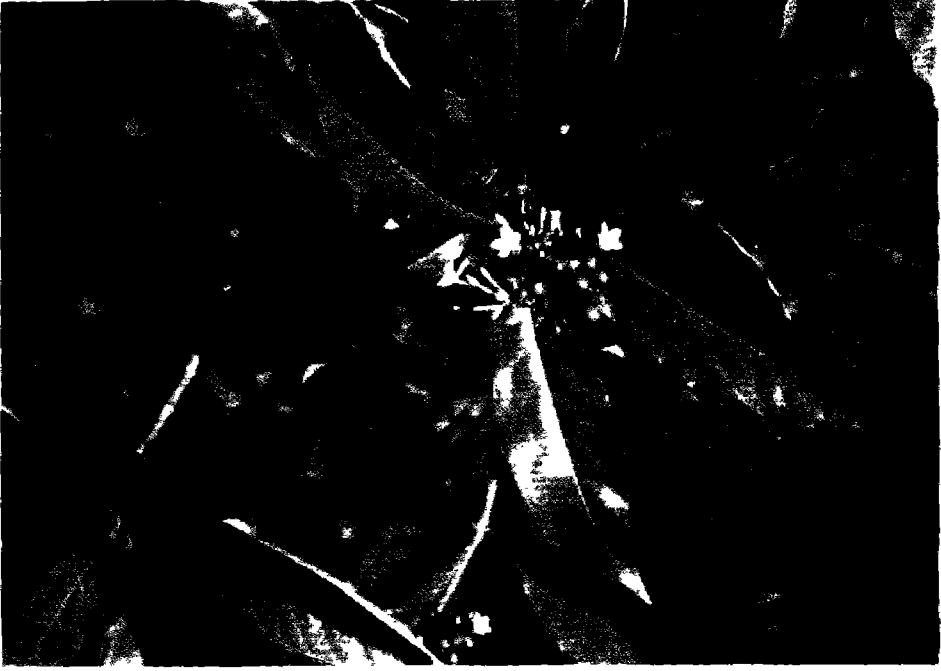
VIII. सर्पगंध (राउवॉल्फिआ सर्पेंटीना)

IX. अंतमूल (टीलोफोरा ईंडिका)

X. केऊ (कॉस्टुस स्पेसिओसुस)

X1. **बेल** (एग्ले मार्मेलॉस)

21. ईपेकाक

(ईपेकाकुआन्हा)

वैज्ञानिक नाम : **सेफाएलिस ईपेकाकुआन्हा** [*Cephaelis ipecacuanha* (Brot.) A. Rich.]

(कुल – रुबिएसिए)

वर्णन

यह एक झाड़ीनुमा पौधा होता है, इसकी जड़ें पतली होती हैं, और दूर तक भूमि के समतल फैलती हैं। इसके प्रकंदों पर सारे में गोल गोल छल्ले जैसे निशान होते हैं। पत्ते आमने सामने जोड़े में आते हैं। पत्ते निशिताग्र होते हैं, उनके किनारे सीधे होते हैं। फूल सफेद, छोटे तथा छोटे गुच्छों में होते हैं।

प्राप्ति-स्थान

यह पौधा भारत का देशज नहीं है, यह अमेरिका के ब्राजील देश का है, परंतु अब इसकी खेती असम, बंगाल तथा दक्षिण भारत में की जाती है।

औषधीय गुण

पौधे के प्रकंद ही औषधि के काम आते हैं, और ईपेकाक के नाम से प्रख्यात हैं।

यह औषधि अमीबा-पेचिश और भूख कम होने के रोग में लाभप्रद है। इसके अधिक सेवन से कै हो जाती है, अर्थात यह वमनकारी है। इस गुण के कारण इसे खांसी में शांति पहुंचाने के लिए भी प्रयोग करते हैं। यह स्वेदजनक भी है, अर्थात इसके सेवन से पसीना आता है।

ईपेकाक की खेती दुनिया में सबसे अधिक पश्चिमी बंगाल में होती है। यह उपज भारत की ईपेकाक की आंतरिक आवश्यकता की पूर्ति के लिए पर्याप्त है। ईपेकाक की जड़ें काफी निर्यात की जा सकती हैं इसलिए खेती में विस्तार कराये जाने की स्वीकृति मिल गयी है।

22. कुनैन

(सींकोना)

Cinchona species

(कुल – रुबिएसिए)

इस औषधि का कुनैन नाम क्विनीन शब्द पर आधारित है। क्विनीन ही इस वृक्ष की छाल का मुख्य उपयोगी तत्व है।

सींकोना भारत में स्वाभाविक रूप से नहीं होता। इस वंश की कोई जाति यहां स्वयं नहीं उगती, किंतु कई जातियों का रोपण किया जाता है। इनमें से चार मुख्यत: उपयोगी हैं।

1. सींकोना कालीसाया (*Cinchona calisaya* Wedd. 'कालीसाया बार्क', 'पेरुवियन बार्क'); यह वृक्ष नीलगिरी पर्वत तथा सिक्किम में उगाया जाता है।

2. सींकोना आफ्फ़ीसिनालिस (*C. officinalis* L. 'क्राउन बार्क', 'लोक्सा बार्क') यह नीलगिरी क्षेत्र में ही लगाया जाता है।

3. सींकोना सुक्कीरूब्रा (*C. succirubra* Pav. ex Klotzsch, 'रैड बार्क'), यह सतपुड़ा पहाड़ियों में, सिक्किम में तथा दक्षिण भारत में लगाया जाता है।

4. सींकोना लेजेरिआना (*C. ledgeriana* Moens, 'लेजर बार्क') : यह बंगाल, असम तथा दक्षिण भारत में उगाया जाता है। भारत में सींकोना की सबसे अधिक प्रचलित जाति यही है।

पहली तीन जातियों के पौधे प्राय: बड़े या मझोले वृक्ष होते हैं। सींकोना लेजेरिआना का पौधा झाड़ीनुमा, फैला-सा होता है।

औषधीय गुण

इन वृक्षों की छाल सुखाकर औषधि के काम आती है। सींकोना में अनेक उपयोगी तत्व होते हैं, इनमें क्विनीन सबसे प्रमुख है।

यह ज्वरनाशक (विशेषकर मलेरिया में) गुण के लिए प्रसिद्ध है। इस औषधि के सेवन से ज्वर तुरंत उतर जाता है और नियमित मात्रा में सेवन करते रहने से फिर ज्वर नहीं होता।

कुनैन कुछ प्रकार के बैक्टीरिया द्वारा उत्पन्न रोगों को दूर करती है। इसकी बनी औषधियां

निमोनिया, अमीबा-पेचिश और नेत्ररोगों में भी उपयोगी सिद्ध हुई हैं।

कुनैन से बने मरहम, तेल, घोल आदि गठिया के दर्द पर लगाने के, तथा कुल्ला या गरारा करने के भी काम आते हैं।

कुनैन अधिक मात्रा में सेवन करने से मतली व चक्कर आ जाते हैं, तथा नेत्र एवं कर्ण थोड़े समय के लिए, अथवा कभी कभी पूरी तरह से, नष्ट होने का भय रहता है। गर्भवती स्त्रियों तथा हृदय रोगियों को कुनैन की बनी औषधियां नहीं दी जाती हैं।

अन्य उपयोग

कुनैन की छाल से प्राप्त क्विनीन पर, तथा इसके अन्य तत्वों पर, आधारित अनेक कीटनाशी पदार्थ कपड़ों आदि की सुरक्षा के लिए प्रयोग होते हैं। यह जूं मारने के लोशन बनाने के काम आती है। क्विनीन निकालने के बाद बची हुई छाल को टैनीन पदार्थों के लिए भी प्रयोग कर लेते हैं।

23. दारचीनी

(सीन्नामोन)

वैज्ञानिक नाम : **सीन्नामोमुम वेरुम** (*Cinnamomum venum* Presl. syn. *C. zeylanicum* Blume) चित्र 8

(कुल – लॉरेसिए)

अन्य नाम : **हिंदी** – दालचीनी;
संस्कृत – दारुशिला;
उड़िया, गुजराती, मराठी, बंगला – दालचीनी;
कन्नड़ – लवंगपट्टी, लवंगचेक्के;
तमिल – कन्नलवंगपट्टे।

इस वृक्ष के वैज्ञानिक नाम में जेईलानिकुम शब्द यह संकेत करता है कि इस वृक्ष का संबंध सीलोन, अर्थात लंका देश से है। यह लंका में प्राकृत रूप से उगता है।

वर्णन

दारचीनी का वृक्ष सदाहरित होता है, अर्थात यह पूर्णत पर्णहीन कभी नहीं होता। यह लगभग 6-8 मी तक ऊंचा हो जाता है। इसके पत्ते बड़े, अंडाकार, मोटे, चीमड़, निशिताग्र, ऊपर चमकीले-गाढ़े हरे रंग के और नीचे हल्के हरे रंग के होते हैं। इनमें 3 या 5 मोटी शिराएं होती हैं जो पत्तों के आधार से शीर्ष तक अथवा मध्य तक स्पष्ट दिखाई देती हैं। फूल अत्यंत छोटे होते हैं और रोमिल गुच्छों में लगते हैं। फल गहरे-बैंजनी या नीले रंग के अंडाकार या दीर्घायात 1.5-2 सेमी लंबे होते हैं। उनमें एक बीज होता है।

प्राप्ति-स्थान

दारचीनी का वृक्ष दक्षिणी भारत में लगभग 1,500 मी तक की ऊंचाई वाले क्षेत्रों में होता है, कम ऊंचे स्थानों में यह अधिक होता है। कुछ स्थानों पर इसका रोपण भी किया गया है।

वृक्ष की शाखाएं काट कर उनकी छाल उतार ली जाती है। अंदर की सूखी छाल को दारचीनी कहते हैं, यह छाल औषधि में काम आती है।

दारचीनी अतिसार, मतली और वमन रोगों में उपयोगी है। यह खाने के मसालों में बहुत
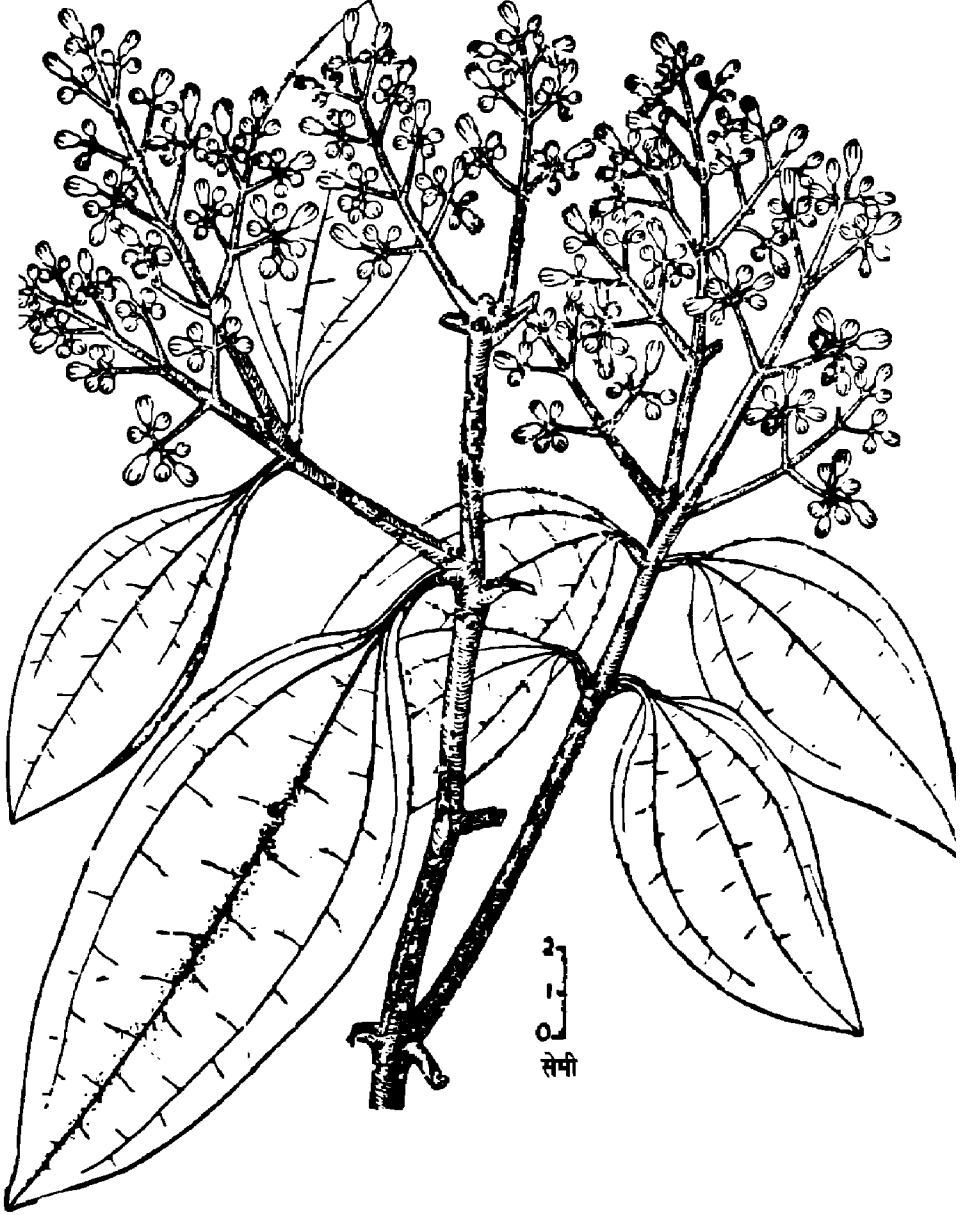
चित्र 8 – दारचीनी (सीन्नामोमुम वेरुम)

प्रयोग होती है। छाल के तेल में भी वही गुण होते हैं जो छाल में। कुछ विचार से तेल का प्रयोग ही अधिक उपयुक्त होता है, यह पाचक, वायुसारी और उद्दीपक (उत्तेजक) होता है। यह पेट का अफारा कम करता है और अंतड़ियों के लिए बलकारक है। इससे कुछ प्रकार के कीटाणु तथा कवक (फंगस) भी नष्ट हो जाते हैं।

अन्य उपयोग

पत्तों से प्राप्त तेल मिठाइयों तथा साबुन को सुगंधित करने के काम आता है। यह गठिया के दर्द में भी लगाया जाता है।

इस वृक्ष के रोपण के लिए दक्षिण भारत, बंगाल, असम तथा अंडमान द्वीप अधिक उपयुक्त स्थान बताये गये हैं।

अन्य जातियां

दारचीनी के वंश की अन्य अनेक जातियां औषधि में काम आती हैं।

कपूर [सीन्नामोमुम कांफ़ोरा *Cinnamomum camphora* (L.) Presl. अंग्रेजी–कैंफर-ट्री] : यह वृक्ष नीलगिरी की पहाड़ियों में तथा उत्तरी भारत के कुछ उद्यानों में लगाया गया है। इसकी लकड़ी व पत्तों से कपूर निकाला जाता है। कपूर मुख्यत: मोच, सूजन, गठिया आदि पर लगाने के काम आता है। कुछ प्रकार के अतिसार तथा हृदय रोगों में कपूर की बनी औषधियों का सेवन भी कराया जाता है।

कपूर नाना प्रकार से व्यावसायिक तथा घरेलू कार्यों में प्रयोग होता है। आजकल कपूर तुलसी के वंश के पौधे (आसीमुम किलिमंडशारीकुम) से भी बनाया जा रहा है। इसका वर्णन तुलसी के अध्याय में भी किया गया है।

तेजपात [सीन्नामोमुम तामाला (*Cinnamomum tamala* Nees & Eberm.) संस्कृत–तमालपत्र; तमिल–तालीश-पत्तीरीया; अंग्रेजी–इंडियन कास्सिआ] : यह पूर्वी हिमालय पर्वत के कुछ क्षेत्रों में होता है, विशेषकर असम और बंगाल में। इसके पत्ते भोजन के मसाले में काम आते हैं। इनमें वायुसारी गुण होता है और यह उदरशूल, मरोड़ अथवा अतिसार में उपयोगी होते हैं।

24. हिरनतूतिया

(कॉलशीकुम)

वैज्ञानिक नाम : **कॉलशीकुम लूटेउम** (*Colchicum luteum* Baker)

(कुल – लीलिएसिए)

अन्य नाम : **संस्कृत** – हिरण्यतूथ;
कश्मीरी – इरकिम, मूंड;
पंजाबी – सुरंजाम-कड़वी ।

वर्णन

यह एकवर्षीय पौधा होता है, इसके कंद (कॉर्म) भूरे या कत्थई रंग के, शक्वाकार होते हैं, वे एक ओर थोड़ा चपटे और दूसरी ओर गोल होते हैं । पत्ते संकरे, 15-30 सेमी तक लंबे, 0.8-1.5 सेमी चौड़े, शीर्ष पर अधिक चौड़े होते हैं । फूल प्राय: 2.5-4 सेमी व्यास के 7-10 सेमी लंबे, पीले रंग के होते हैं । फल 2.5-4 सेमी लंबे होते हैं ।

प्राप्ति-स्थान

हिरनतूतिया हिमालय की उत्तर-पश्चिम श्रेणियों में लगभग 700-2,800 मी ऊंचाई वाले क्षेत्र में, और प्राय: वनों के बाहरी खुले भाग में या घास के मैदानों में उगता है ।

औषधीय गुण

पौधा फूलने से पहले उसके कंद इकट्ठे कर लिये जाते हैं, यही औषधि में काम आते हैं और कॉलशीकुम कॉर्म कहलाते हैं । कुछ पौधे बनने के लिए रोक लिए जाते हैं । उनके पके बीज औषधि में काम आते हैं, इन्हें कॉलशीकुम सीड कहते हैं ।

कंद में मुख्य तत्व कॉलशीसीन होता है यह गठिया (गाउट) की सूजन व दर्द में उपयोगी है । अस्पतालों में इस औषधि से परीक्षण किये गये हैं । बहुत समय तक थोड़ी और नियमित मात्रा में कंद से बनी औषधि के सेवन से लगभग 60 प्रतिशत रोगियों को लाभ हुआ । इस औषधि से एक हानि भी है, यह अंतड़ियों में तीव्र जलन पैदा कर सकती है । इसके शमन के लिए अंगूरशफ़ा (बेल्लाडोन्ना) या खुरासानी-अजवायन का सेवन बताया गया है ।

हिरनतूतिया के बीज में, विशेषकर बीज के छिलके में, कॉलशीसीन होती है, और इस

कारण बीज भी कंद की तरह प्रयोग होते हैं । कैंसर पर कॉलशीसीन का प्रभाव देखने के लिए कुछ परीक्षण किये गये हैं । यह देखा गया है कि इस औषधि के उपचार से कैंसर कोशिकाओं की बढ़ोतरी कुछ कम हो जाती है, तथा ऐसे कोष्ठकों पर एक्सरे (X' Ray) चिकित्सा भी अच्छी प्रकार हो पाती है । कुछ अनुसंधानशालाओं में इस विषय पर कार्य हो रहा है । कैंसर के उपचार में हिरनतूतिया का प्रयोग अभी आरंभ नहीं हुआ है ।

यह पौधा हिमालय की ऊंची श्रेणियों में 1,500-3,000 मी ऊंचाई वाले क्षेत्रों में उगाया जा सकता है ।

अन्य उपयोग

कॉलशीसीन पौधों के प्रजनन संबंधी अनुसंधान कार्य में काम आती है । इसके प्रयोग से पौधों की कोशिका एवं क्रोमोसोम के विभाजन में कुछ परिवर्तन आ जाते हैं और पौधों में बहुगुणिता (पॉलीप्लॉइडी) उत्पन्न कर दी जाती है । खाने की फसलों व फलों आदि में पौधों पर प्रायः ही ऐसे परीक्षण किये जाते हैं और शोधकार्य द्वारा वनस्पतिज्ञ अधिक हष्टपुष्ट, निरोगी व अधिक पैदावार देने वाली किस्में पैदा कर लेते हैं ।

25. मिश्मी तीता

(कॉप्टिस)

वैज्ञानिक नाम : **कॉप्टिस टीटा** (*Coptis teeta* Wall)

(कुल – रैननकुलेसिए)

अन्य नाम : **असमिया, बंगला** – तीता;
मिश्मी – अरोंग, पावा।

वर्णन

यह एक छोटा पौधा है, इसमें तना लगभग नहीं होता। मूल काष्ठमय, सुनहरे पीले होते हैं, उन पर घनके रेशे होते हैं। इनका स्वाद अत्यंत कड़वा होता है। पत्ते संयुक्त व चिकने होते हैं। पत्रक 5.0-7.5 सेमी लंबे, चौड़े-भालाकार होते हैं। फूल सफेद, छोटे तथा संख्या में एक से तीन तक होते हैं। फल में काले रंग के अनेक बीज होते हैं।

प्राप्ति-स्थान

यह पौधा अरुणाचल प्रदेश की मिश्मी पहाड़ियों में पाया जाता है।

औषधीय गुण

इस पौधे के प्रकंद सुखाकर औषधि में प्रयोग करते हैं। ये पौष्टिक तथा उदर रोगों में उपयोगी होते हैं, ये रुक रुक कर आने वाले ज्वर में लाभदायक हैं।

इस पौधे में बेर्बेरीन वर्ग के तत्व होते हैं।

पौधे की जड़ें अत्यधिक संख्या में उखाड़े जाने के कारण वनों में इसकी प्राकृतिक उपज कम होती जा रही है, किंतु इसकी कृषि को प्रोत्साहन मिल रहा है। इसका निर्यात अब वर्जित है।

जंगली पौधों की तुलना में कृषि द्वारा उगाये हुए पौधों में प्रकंद कहीं अधिक मात्रा में होते हैं।

थालीक्ट्रुम तथा पीक्रोर्हीजा (कुटकू) के फूल के प्रकंद मिश्मी तीता में मिलावट के रूप में प्रयोग किये जाते हैं।

26. झाड़ी-हल्दी

(कॉस्सीनिउम)

वैज्ञानिक नाम : **कॉस्सीनिउम फेनेस्ट्राटुम** [*Coscinium fenestratum* (Gaertn.) Colebr.]

(कुल – मेनीस्पर्मेसिए)

अन्य नाम : **संस्कृत** – दारुहरिद्र;
कन्नड़ – मरामंजलि, दोड्डामराद्अरिसिना;
तमिल – मरामंजलि;
तेलुगु – मनुपसुप;
बंगला – हल्दी-गाछ;
मराठी – वेनीवेल।

वर्णन

यह एक बड़ी मोटी, आरोही लता होती है। इसकी छाल पीली होती है। नये पौधों की शाखाएं अत्यंत रोमिल होती हैं। पत्ते चीमड़, चमकदार, ऊपर चिकने, नीचे मृदु-रोमिल, वर्तुल या अंडाकार और निशिताग्र होते हैं। उन पर 5 या 7 मोटी शिराएं होती हैं। फूल छोटे होते हैं; और छोटे गुच्छों में लगते हैं।

प्राप्ति-स्थान

यह पौधा दक्षिण भारत में, विशेषकर पश्चिमी घाट प्रदेश में होता है।

औषधीय गुण

झाड़ी-हल्दी की शाखाएं सुखाकर औषधि में काम आती हैं। इनमें बेर्बेरीन नामक तत्व होता है।

यह औषधि ज्वर, शरीर की दुर्बलता और कुछ प्रकार के अजीर्ण में उपयोगी है। यह एंटीसेप्टिक भी है और इस कारण फोड़े या जख्म पर लगाने के काम आती है। परीक्षणों से ज्ञात होता है कि पौधे की जड़ों में एंटीबायोटिक तत्व होते हैं।

अन्य उपयोग

झाड़ी-हल्दी की शाखाओं से एक पीला रंग निकलता है जो हल्दी के साथ मिलाकर, या अलग, प्रयोग किया जाता है।

27. केऊ

(कॉस्टुस)

वैज्ञानिक नाम : **कॉस्टुस स्पेसिओसुस** [*Costus speciosus* (Koen. ex Retz.) Sm.]
रंगीन प्लेट X

(कुल – जींजीबेरेसिए)

अन्य नाम : **संस्कृत** – कुस्थ;
कन्नड़ – चंगलवकोष्टु;
गुजराती – पोकरामुल;
तमिल – कुररम;
तेलुगु – किमुक;
पंजाबी – केवली;
बंगला – कुस्ट;
मराठी – पेंवा;
मलयालम – कोएट्टम।

वर्णन

यह पौधा सीधा, लगभग एक मीटर तक ऊंचा होता है, इसके मूल प्रकंद जैसे होते हैं। पत्ते 15-30 सेमी लंबे होते हैं, उनमें डंठल अत्यंत छोटे या नहीं होते। पत्तों की निचली सतह रोमिल होती है। फूल नलिकाकार और सफेद होते हैं, उनके सहपत्र लाल होते हैं। फूल घनकी 5-13 सेमी लंबी स्पाइकों में लगते हैं। फल लाल, लगभग 2 सेमी व्यास के संपुट होते हैं, बीज काले होते हैं।

प्राप्ति-स्थान

यह पौधा लगभग सारे भारत में, विशेषत: मैदानी तथा 120 मी ऊंचाई तक के क्षेत्रों में मिलता है। प्राय: ही ऊसर भूमि, नगरों, सड़कों व खेतों के निकट रिक्त स्थानों में भी उग जाता है। पौधे के सुंदर पुष्पों तथा उपयोगी प्रकंदों के लिए केऊ की कृषि भी की जाती है।

औषधीय गुण

केऊ के हरे या सूखे प्रकंद औषधि में काम आते हैं। प्रकंदों में म्यूसीलेज और किंचित कषाय होता है। इनमें पौष्टिक तथा रेचक गुण बताये जाते हैं। उत्तर प्रदेश में जड़ों को शोधक, पौष्टिक, कृमिनाशक तथा कामोद्दीपक गुणों के लिए प्रयोग करते हैं। ये सर्दी, ज्वर, खांसी, त्वचा रोग, सर्पदंश तथा अपच में भी प्रयोग होती हैं।

गर्भनिरोधी औषधियां बनाने के लिए स्टीराइडल संश्लेषण के हेतु केऊ भी एक स्वदेशी स्रोत उपलब्ध है, किंतु इसमें डायोस्जेनिन की मात्रा डिओस्कोरेआ से कम है।

केऊ से प्राप्त स्टीराइडल पदार्थों में गर्भरोधक, आमवातहर तथा सूजन कम करने के गुण परीक्षणों द्वारा सिद्ध हुए हैं। कुछ पदार्थों में स्थानिक निश्चेतक (लोकल एनेस्थीसिआ) के गुण भी दर्शाये गये हैं।

प्रकंदों से प्राप्त क्षारों में मरोड़ व हृदय रोग में उपयोगी अंश पाये गये हैं, वे मूत्रविरेचक भी होते हैं। ये केंद्रीय तंत्रिका तंत्र पर अवसादक भी हैं।

अन्य उपयोग

प्रकंद पकाने के बाद खाने के काम में भी आते हैं। उनमें स्टार्च तो बहुत होता है किंतु अन्य खाद्य प्रकंदों व जड़ों की तुलना में इनमें रेशे बहुत होते हैं।

28. रोशा-घास

वैज्ञानिक नाम : **सींबोपोगोन मार्टिनी** [*Cymbopogon martinii* (Roxb) Watson.]
रंगीन प्लेट I

(कुल – ग्रामिनिए)

अन्य नाम : **हिंदी** – रोहिशा, गंधेल, मिर्चियागंध।

वर्णन

यह एक बड़ी घास होती है; इसके पत्तों में एक सुगंधित तेल होता है, जिसके कारण उन्हें थोड़ा-सा मसलने से बहुत अच्छी सुगंध आती है।

प्राप्ति-स्थान

यह घास लगभग समस्त भारत में, मुख्यतः शुष्क प्रदेशों में होती है।

औषधीय गुण

इस घास के पत्तों से एक तेल निकलता है जिसे रोशा कहते हैं, यह औषधि में प्रयोग होता है। रोशा त्वचा रोग, गंजापन तथा कमर के दर्द की चिकित्सा में उपयोगी है, इसका लेप किया जाता है। जिगर खराब होने पर पित्त आदि विकारों में इसका सेवन भी बताया गया है।

अन्य उपयोग

रोशा के वंश की कुछ अन्य जातियां भी औषधि में काम आती हैं, किंतु उनका प्रयोग बहुत प्रचलित नहीं है। उनसे प्राप्त तेल प्रायः सुगंधित होते हैं और साबुन, तेल आदि वस्तुओं को सुगंधित करने के काम आते हैं।

सींबोपोगोन सीट्राटुस [*Cymbopogon citratus* (DC.) Stapf] भारत के अनेक क्षेत्रों में उगाई जाती है। इससे प्राप्त तेल 'वेस्ट इंडियन लेमनग्रास आयल' कहलाता है। इस घास के पत्तों को कहीं कहीं चाय की तरह प्रयोग करते हैं, इसकी बनी चाय अच्छी स्वादिष्ट होती है। सींबोपोगोन फ्लेक्सुओसुस [*Cymbopogon flexuosus* (Nees ex Steud.)

Watson] दक्षिण भारत, उत्तर प्रदेश और सिक्किम में होती है। इससे 'लैमन-ग्रास आयल' निकलता है। इस तेल में विटामिन 'ए' होता है। यह तेल, साबुन, आदि को सुगंधित करने के लिए भी प्रयोग होता है। केरल में इसकी खेती की जाती है।

सींबोपोगोन नार्डुस [*Cymbopogon nardus* (L.) Rendle] भी भारत के कई क्षेत्रों में मुख्यत: दक्षिण भारत में होती है। इस घास से प्रख्यात 'सिट्रोनेला' तेल निकलता है। इस तेल से भी मच्छर, कीड़े आदि भगाने की औषधियां बनती हैं।

29. धतूरा

[स्ट्रामोनिउम]

वैज्ञानिक नाम : **डाटूरा स्ट्रामोनिउम** (*Datura stramonium* L.)

रंगीन प्लेट VI

(कुल – सोलेनेसिए)

अन्य नाम : **हिंदी, संस्कृत, पंजाबी** – धतूरा;
कन्नड़ – मद्दगुणिके;
गुजराती – धोलो-धतूरो;
तमिल – उम्मात्तई;
तेलुगु – दत्तूरमु;
मलयालम – उम्मत्तई, उम्मम;
बंगला – शेटधुतरो ।

वर्णन

यह एक झाड़ीनुमा लगभग 1 मी ऊंचा पौधा होता है; इसके पत्ते अंडाकार और दंतुर होते हैं। फूल लगभग बड़े, सफेद रंग के होते हैं। फल अंडाकार होते हैं और 4 भागों में विभाजित होते हैं। समूचे फल पर छोटे या लंबे कांटे-से होते हैं। फल में बहुत-से बीज होते हैं।

प्राप्ति-स्थान

यह पौधा हिमालय पर्वत की ऊंची श्रेणियों में लगभग 2,500 मी ऊंचाई तक के स्थानों में होता है। यह मध्य तथा दक्षिण भारत के पर्वतों पर भी मिलता है।

औषधीय गुण

पौधों के सुखाये हुए पत्ते, फूल वाली ऊपर की शाखाएं तथा बीज औषधि में प्रयोग होते हैं।

पत्तों में मुख्यतया ह्विओसिआमीन नामक तत्व होता है, इसलिए यह औषधि उसी प्रकार काम में लाई जाती है जैसे अंगूरशफ़ा (बेल्लाडोन्ना अथवा खुरासानी-अजवायन)।

यह श्वासनली की सूजन व दमा में लाभप्रद है, तथा मुंह में लार बनने की क्रिया का

संतुलन करती है। इसमें एंटीस्पासमोडिक (अर्थात मरोड़ या ऐंठन जैसे रोगों को दूर करने के) तथा स्वापक गुण भी होते हैं। पत्तों का धुआं नाक में लेने से भी दमा में शांति पड़ती है। बीज में भी मुख्यतः हिओसिआमीन ही होता है, और इस कारण बीज भी उन्हीं रोगों में लाभप्रद हैं।

अन्य जातियां

धतूरा के वंश की दो जातियां औषधि में काम आती हैं।

काला-धतूरा (डाटूरा मेटेल – *Datura Metel* L.) यह समस्त भारत में मिलता है, विशेषतः नगरों के आसपास बेकार भूमि में प्रायः ही इसके पौधे उग आते हैं। इसके फूल सफेद या हल्के-पीले से और बाहर से प्रायः जामुनी रंग के होते हैं। दलपुंज में 5 कोण होते हैं, फल पर छोटे कांटे होते हैं, इस पौधे का रोपण भी किया जाता है। रोपण किये पौधों के फूल प्रायः ही 'डबल' होते हैं, अर्थात उनमें दलपुंज के बाहर एक और दलपुंज बन जाता है। इसके पत्तों की पुलटिस बांधने से स्तनों की सूजन, जो अधिक दूध बनने से हो जाती है, रुक जाती है। पत्तों और बीज में वह सभी औषधीय गुण हैं, जो स्ट्रामोनिउम में।

सादा धतूरा (डाटूरा ईन्नोक्सिआ–*Datura innoxia* Mill.) यह एक विदेशी पौधा है, जो अब भारत में कई क्षेत्रों में फैल गया है। इसके दलपुंज में 10 कोण होते हैं। (काला-धतूरा की तरह 5 नहीं)। फल पर छोटे व मुलायम कांटे होते हैं। बीज भूरे-कत्थई रंग के होते हैं। इसके पत्तों में वही गुण होते हैं जो स्ट्रामोनिउम में। इस पौधे का रोपण किया जाना चाहिए।

30. तिलपुष्पी

(डीजिटालिस)

वैज्ञानिक नाम : **डीजिटालिस पर्पुरिआ** (*Digitalis purpurea* L.)

(कुल – स्क्रोफुलेरिएसिए)

अन्य नाम : **अंग्रेजी** – फॉक्स-ग्लव ।

इस पौधे के फूल तिल (सेसामुम ईंडिकुम –*Sesamum indicum* L.) के पौधे जैसे होते हैं, इसलिए इसे तिलपुष्पी नाम दिया गया है ।

वर्णन

यह पौधा बहुवर्षीय अथवा द्विवर्षीय होता है, और प्रायः 1-2 मी तक ऊंचा हो जाता है । नीचे वाले पत्तों के डंठल बहुत लंबे होते हैं । ये पत्ते रोमिल, अंडाकार, 15-30 सेमी लंबे होते हैं । ऊपर वाले पत्तों में डंठल बहुत छोटा या नहीं होता । ऊपर की ओर पत्ते छोटे होते हैं । वह 30-60 सेमी लंबे गुच्छों में लगते हैं । फल अंडाकार होता है ।

प्राप्ति-स्थान

यह पौधा भारत में स्वाभाविक रूप से नहीं होता । उत्तरी भारत में कश्मीर तथा अन्य पर्वतीय क्षेत्रों में इसकी खेती की जाती है । यह पहले दार्जिलिंग एवं नीलगिरी की पहाड़ियों में भी बोया जाता था, किंतु अब वहां इसकी खेती समाप्त कर दी गयी है । तिलपुष्पी के पौधे कुछ स्थानों पर खेतों के बाहर भी फैल गये हैं और जंगली रूप से उग आते हैं ।

औषधीय गुण

तिलपुष्पी के पत्ते सुखाकर औषधि में प्रयोग करते हैं । पत्तों को लगभग 60^{0} सेल्सियस पर सुखाना चाहिए; तथा यह कार्य पौधे उखाड़ने के तुरंत बाद ही करना उपयुक्त है ।

इस औषधि का मुख्य उपयोग हृदय-रोगों में होता है । यह हृदय की पेशियों को उत्तेजित करती है और उनकी गति बढ़ाती है । यदि रक्त के संकुलन के कारण हृदय की गति बंद हो जाये तो उसमें यह लाभप्रद है । तिलपुष्पी कोरोनरी धमनियों में अधिक रक्त भेजती है और इस कारण हृदय के लिए बलकारक है ।

रक्त का संचार शिथिल होने से यदि जलोदर होने लगे तो तिलपुष्पी लाभ करती है और हृदय की गति एवं क्रिया ठीक करने में सहायक होती है।

यह गुर्दे में भी रक्त प्रवाह ठीक करती है, और इस कारण मूत्रल है, तथा गुर्दे के अवरोध दूर करती है।

तिलपुष्पी के बने मरहम फोड़ों पर तथा जले के जख्मों पर भी लगाये जाते हैं।

इस औषधि का अधिक अथवा निरंतर सेवन कुछ हानिकारक भी है। इससे सिर में दर्द, चक्कर आदि आ सकते हैं; औषधि के सेवन के समय इस बात पर ध्यान रखना आवश्यक है।

अन्य जातियां

तिलपुष्पी के वंश की अन्य जाति डीजिटालिस लानाटा (*Digitalis lanata* Ehrh. अंग्रेजी–वूली-फॉक्स-ग्लव) कश्मीर में होती है। इसकी खेती भी की जाती है। इसके फूल छोटे, रोमिल तथा गेहुंए, पीले या बैंजनी रंग के होते हैं। इस पौधे में औषधीय गुण और भी अधिक उग्र होते हैं, साथ ही इसके सेवन से किसी विशेष हानि की संभावना भी कम है।

31. डिओस्कोरिआ

वैज्ञानिक नाम : **डिओस्कोरिआ** *(Dioscorea)*

(कुल – डिओस्कोरिएसिए)

वर्णन

यह कई जातियों वाली कुंडलाकार बूटी है। कुछ जातियों में दायीं ओर होती है तथा कुछ में बायीं ओर। पत्तियां सामान्य या संयुक्त होती हैं, अधिकतर रेशे सुस्पष्ट होते हैं। अधिकतर जाति के प्रकंदों की जड़ें कंदील होती हैं तथा कंद गोलाकार या विभिन्न आकृतियों की बनावट के होते हैं जो तने या पत्तियों पर होते हैं।

भारत में इसकी लगभग 50 जातियां पाई जाती हैं; इसकी कई जात्यिों जैसे– अरबी, रतालू आदि की खेती भी की जाती है। गत वर्षों में इसने डायोस्जेनिन आदि स्टेरोइडल सेपोजेनिनों के स्रोत के रूप में काफी ख्याति पाई है। इनसे कार्टिजोन के संश्लेषण के लिए काफी पदार्थ मिलते हैं। कार्टिजोन गठिया के इलाज के लिए तथा यौन हारमोनों के निर्माण के लिए काफी उपयोगी होता है।

डिओस्कोरिआ डेल्टोइडिआ (पंजाबी – क्रिस, कित्र; कश्मीरी– किंस, किथि, किल्डी) आरोही पौधा है तथा उत्तर पश्चिमी हिमालय व सुदूर मध्य हिमालय क्षेत्रों में पाया जाता है। इसके प्रकंदों में डायोस्जेनिन काफी मात्रा में होता है।

डि. प्रेजेरी (अप्रचलित नाम – *डि.डेल्टोइडिया, डि.सिक्किमेसिस*) पूर्वी हिमालय, बिहार के उत्तरी भागों, बंगाल, नेपाल, सिक्किम, भूटान तथा असम में पाया जाता है। अब यह भारत के अन्य भागों में भी सफलतापूर्वक उगाया गया है। इसके प्रकंदों में डायोस्जेनिन काफी मात्रा में होता है।

अन्य उपयोग

अरबी विशेष रूप से पहाड़ी कबीलों तथा गरीबों के भोजन का एक सामान्य अंग है।

डि. अल्टाटा (हिंदी तथा बंगाली– खामल, चुपड़ी, आल; कन्नड़– ओंथाला– इगासू, तंगजेनासु; मलयालम– कावाथु; तमिल– पेरुवल्लोकिझांगु; तेलुगु– पेंडालामु) एक बड़ा आरोही पौधा होता है जो खाद्य-प्रकंद होने के कारण उगाया जाता है। *डि. बल्विफेरा, डि. हिस्पिडा* तथा *पेंटाफिला* भारत में लगभग सभी स्थानों पर पाये जाते हैं, इनके प्रकंद भी खाये जाते हैं। डिओस्कोरिआ की कुछ जातियां औद्योगिक स्टार्च भी देती हैं।

32. इलायची

(कार्डेमोम)

वैज्ञानिक नाम : **एलेट्टारिआ कार्डामोमुम** [*Elettaria cardamomum* (L.) Maton]
चित्र 9

(कुल – जीजीबेरेसिए)

अन्य नाम : **हिंदी** – छोटी इलायची;
संस्कृत – एला, उपकंचिका;
कन्नड़ – येलकी;
तमिल – एलम, येलक्कई;
तेलुगु – एलाकी;
बंगला – छोटो-एलाच;
मराठी – वेलदोडे;
मलयालम – ऐलम।

वर्णन

इस पौधे के प्रकंद मोटे, सरस और शाखित होते हैं। इसके तने सीधे होते हैं और कभी कभी 3 मी तक ऊंचे हो जाते हैं। पत्ते बहुत बड़े 30-90 सेमी लंबे व संकरे होते हैं। उनमें एक मोटी मध्यशिरा होती है, जिसके दोनों ओर अनेक पतली पार्श्वशिराएं होती हैं। जिस शाखा पर फूल आते हैं वह पौधे के आधार के निकट निकलकर भूमि पर ही फैलती है। फूल लगभग 4 सेमी लंबे, सफेद या केलई रंग के होते हैं और बड़े 30-90 सेमी लंबे गुच्छों में आते हैं। फल लगभग 1.5 सेमी लंबे, अंडाकार, तिकोने से हरे-पीले रंग के होते हैं, उनमें तीन कोष्ठक होते हैं। प्रत्येक में कई बीज होते हैं जो तिकोने, भूरे या काले रंग के होते हैं। पौधे तथा पत्तों का आकार भिन्न स्थानों पर तथा पृथक किस्मों (वरायटी) के अनुसार प्राय: बहुत भिन्न होता है, किंतु सबमें फल और बीज (अर्थात इलायची और उसके दाने) का आकार प्राय: एक-सा ही रहता है।

अक्सर गंधक के धुएं से इनका रंग उड़ाकर इन्हें बाजार में भी बेचा जाता है।

प्राप्ति-स्थान

छोटी इलायची का पौधा दक्षिण भारत में स्वाभाविक रूप से उगता है। यह विशेषकर मैसूर
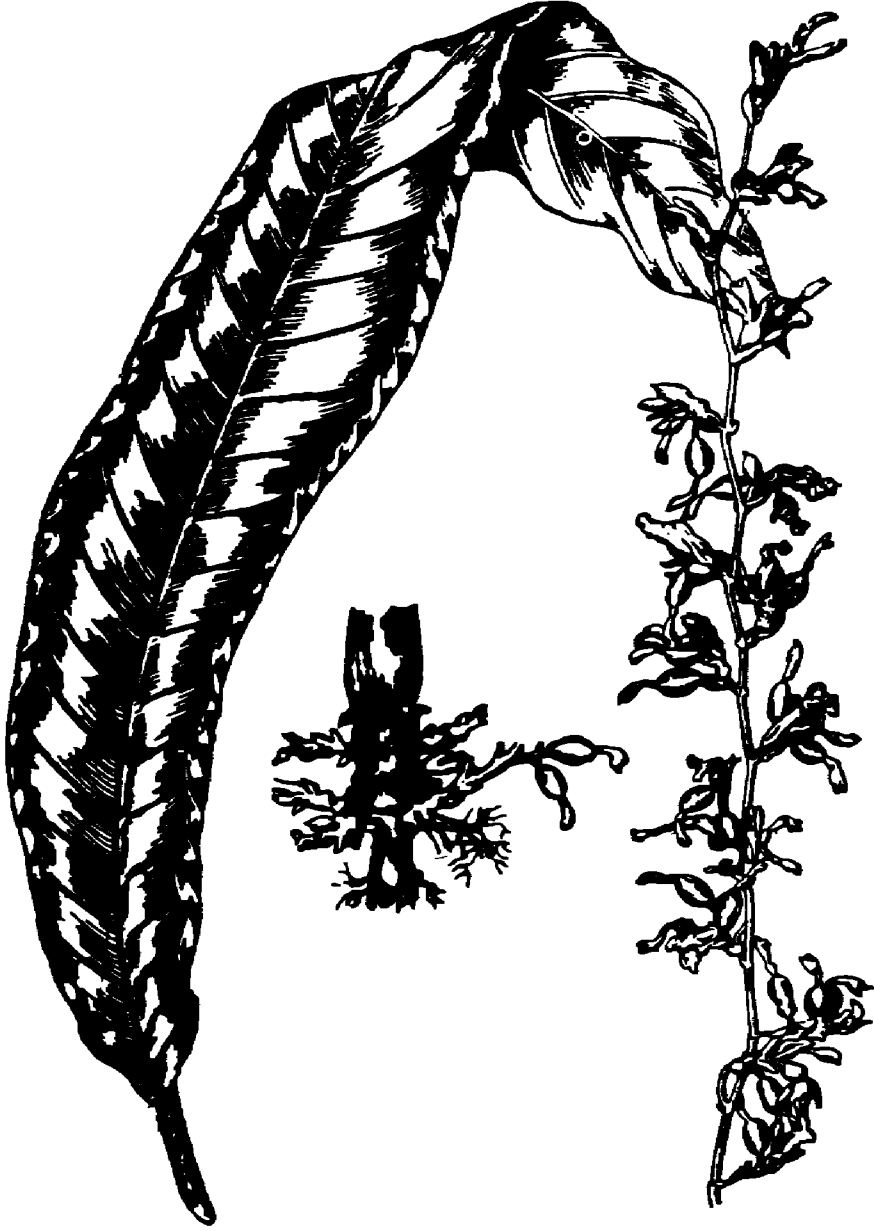
चित्र 9 – **छोटी इलायची** (एलेट्टारिआ कार्डामोमुम)

व केरल के पर्वतीय क्षेत्रों के नम वनों में अधिक होता है। भारत के कुछ अन्य भागों में इसकी खेती भी की जाती है।

औषधीय गुण

पौधे के सुखाए हुए फल– अर्थात इलायची– औषधि के काम आते हैं। वास्तव में तो बीज प्रयोग होते हैं, किंतु बीज निकालकर नहीं रखे जाते। प्रयोग करने के साथ ही फल छीलकर बीज निकाले जाते हैं। इलायची मुख्यतः पेट के अफारे को दूर करने के लिए लाभप्रद है। यह पाचक होती है। यह रेचक पदार्थों के साथ भी दी जाती है, तथा खाद्य पदार्थों को (जैसे मिठाई, हलुआ, खीर आदि) सुगंधित करने के लिए प्रयोग होती है। लौंग, अदरक व जीरा के साथ पीसकर खाने से यह अपच दूर करती है।

अन्य उपयोग

इलायची नाना प्रकार के खाद्य-पदार्थों में प्रयोग की जाती है। बीज का तेल अनेक पेय-पदार्थों को सुगंधित करने के काम आता है।

33. बायबिड़ंग

(एंबेलिआ)

वैज्ञानिक नाम : **एंबेलिआ त्स्जेरिआमकोट्टाम** *(Embelia tsjeriamcottam* ADC)

(कुल – मीर्सीनेसिए)

अन्य नाम : **हिंदी** – गइया, भूंगी;
उड़िया – नूनूनिया;
बंगला – घाड़की-झांटी;
मराठी – वाइवडुंग, अंबाटी।
(संथाल-भाबरी)

इस पौधे का व्यापारिक नाम इसके वैज्ञानिक नाम पर आधारित है।

वर्णन

बायबिड़ंग का पौधा झाड़ीनुमा या छोटा-सा वृक्ष होता है। नयी शाखाओं पर कत्थई या भूरा रोम होता है। पुरानी शाखाएं अरोमिल हो जाती हैं, शाखाओं पर अनेक छोटी सफेद ग्रंथियां होती हैं। पत्ते लगभग 12 सेमी तक लंबे और आधार एवं शीर्ष पर निशिताग्र होते हैं। पत्तों पर भी अनेक छोटी ग्रंथियां होती हैं। किनारे दतुंर या सीधे होते हैं। पत्ते कभी कभी नीचे की ओर लाल से रंग के और शिराओं पर रोमिल होते हैं। फूल अत्यंत छोटे, केलई रंग के होते हैं। वह पत्तों के कक्ष में लगे छोटे और अत्यंत रोमिल गुच्छों में होते हैं। फल छोटे, गोल, निशिताग्र तथा पकने पर लाल होते हैं।

प्राप्ति-स्थान

बायबिड़ंग भारत के पूर्वी प्रायद्वीपी भाग में अधिक होता है।

औषधीय गुण

पौधे के फल सुखाकर औषधि में काम आते हैं।

यह औषधि विशेषकर टेपवर्म नामक कृमियों की चिकित्सा में काम आती है। नियमित मात्रा में औषधि सेवन करने से टेपवर्म मर जाते हैं। किसी रेचक औषधि की सहायता से इन्हें

मल के साथ निकाल दिया जाता है। बायबिड़ंग स्वयं भी मृदुरेचक है।

हाल में किये गये परीक्षणों से यह पुष्टि हुई है कि बायबिड़ंग केवल टेपवर्म पर ही लाभप्रद है; हुकवर्म या राउंडवर्म पर नहीं। यह केंचुओं को भी नष्ट कर देती है; और 'एस्केरियासिस' में भी लाभप्रद होनी चाहिए। इस औषधि में कीटाणुनाशक एवं क्षयरोगनाशक गुण भी हैं।

अन्य जातियां

बायबिड़ंग के वंश की एक अन्य जाति, जिसे वाडुंग अथवा वाबेड़ंग (एंबेलिआ रीबेस *Embelia ribes* Burm. f) कहते हैं, लगभग समस्त भारत में मिलती है। इसको वही स्थानीय नाम दिये जाते हैं जो बायबिड़ंग को। इसके फलों के गुण भी वही हैं, इसलिए इस जाति से प्राप्त फलों का भी भारत के मान्य औषध कोश में उल्लेख है।

34. आंवला

(एंबलिक–माइरोबलान)

वैज्ञानिक नाम : **एंबलिका ऑफ्फीसिनालिस** *(Emblica officinalis* Gaertn.)

चित्र 10

(अस्वीकृत नाम : **फील्लांथुस एंबलिका**)

(कुल– एउफोर्बिएसिए)

अन्य नाम :
संस्कृत – आम्लिका;
असमिया – चुकना-आमलकी;
उड़िया – आवड़ा;
कन्नड़ – नेल्लिकाई;
गुजराती – आमडा,राज्य-आमला;
तमिल – नेल्लिक्कई;
बंगला – आमलोकी;
मराठी – आमला;
मलयालम – आमलकं,नेल्ली ।

वर्णन

आंवला का वृक्ष छोटा या मझोला व पतझड़ी होता है । इसके पत्ते बहुत छोटे 10-13 मिमी लंबे,2-3 मिमी चौड़े,बहुत पास पास लगे होते हैं,इस कारण शाखाएं पंख जैसी दिखती हैं । नर व मादा पुष्प एक ही वृक्ष पर लगते हैं । फूल केलई रंग के,और प्राय: पत्तों के नीचे की ओर छोटे गुच्छों में लगते हैं । नर पुष्प छोटे,अनेक तथा छोटे से वृंत पर लगे होते हैं । मादा पुष्प संख्या में कम होते हैं । फल 1.5-2.5 सेमी व्यास के हरे,सरस व गोल होते हैं,उन पर हल्के रंग की धारियां-सी होती हैं । फल में 6 बीज होते हैं । आंवले के रोपण किए हुए वृक्षों पर अधिक बड़े फल आते हैं ।

प्राप्ति स्थान

आंवले के वृक्ष समस्त मैदानी और तलहटी प्रदेश में होते हैं । मध्य प्रदेश के वनों में आंवले

के सहस्त्रों वृक्ष पाये जाते हैं। इनमें से अधिकांश के फल नष्ट होते हैं। वनवासी इन्हें प्रयोग में नहीं लाते।

औषधीय गुण

वृक्ष के ताजे या सुखाए हुए फल ही औषधि में काम आते हैं।

आंवला भारत की प्रसिद्ध औषधि त्रिफला में पड़ने वाले तीन फलों में से एक है (अन्य दो हैं, हर्रा और बहेड़ा)। 'त्रिफला' रेचक होता है, और जिगर बढ़ जाने पर बवासीर में, नेत्र-रोगों में तथा उदर विकारों में उपयोगी है। आंवले के फल जिगर के लिए पौष्टिक होते हैं। कच्चे फल शीतल और मृदुरेचक होते हैं। फलों से बना सिरका अपच, रक्तक्षीणता, पीलिया, कुछ प्रकार के हृदय-रोग तथा जुकाम में उपयोगी होता है। यह मूत्रल भी है। विटामिन 'सी' की कमी से होने वाले रोगों (जैसे स्कर्वी) में आंवला अत्यंत लाभप्रद है।

फेफड़ों के क्षय रोग या तपेदिक के कुछ रोगियों पर जो परीक्षण किये गये हैं, उनसे सिद्ध हुआ है कि आंवले से प्राप्त विटामिन 'सी' केमिकल से बनाये विटामिन 'सी' की अपेक्षा शरीर में अधिक सुविधा से पच जाता है। इससे प्रतीत होता है कि आंवले में कुछ अन्य उपयोगी, किंतु अज्ञात, तत्व भी हैं।

आंवले के सूखे फल अतिसार एवं पेचिश में उपयोगी हैं। आंवले का मुरब्बा भी औषधि के रूप में प्रयुक्त होता है।

आंवले के फूल, जड़, एवं छाल में भी कुछ औषधीय गुण बताये जाते हैं। इसके बीज दमा एवं उदर के रोगों में लाभप्रद बताये गये हैं।

अन्य उपयोग

आंवले के फल रोशनाई (स्याही), रंग तथा केश धोने के मसाले बनाने के काम आते हैं। फल और टहनियों की छाल में टैनीन होते हैं, जो चमड़ा कमाने व रंगने के काम आते हैं।

आंवले की लकड़ी विविध घरेलू वस्तुएं बनाने के काम आती है। यह पानी में शीघ्र नहीं गलती, इसलिए यह कुएं की चौखट आदि बनाने के काम आती है।

आंवले के पत्ते इलायची के खेतों में खाद के लिए अच्छे समझे जाते हैं; पत्तों की खाद एल्कली भूमि के सुधार के लिए भी उपयोगी है।
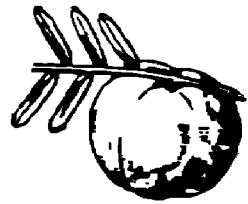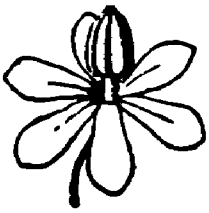
चित्र 10–**आंवला** (एंबलिका ऑफ्फीसिनालिस)

35. असमानियां

(एफेड्रा)

वैज्ञानिक नाम : **एफेड्रा गेरार्डिआना** (*Ephedra gerardiana* Wall.)

(कुल – नीटेसिए)

अन्य नाम : **हिंदी** – फोक, खंदा;
पंजाबी – बुदशुर;
(जौनसार– तूतगांठा ।

वर्णन

यह पौधा लगभग 1 मी ऊंचा, झाड़ीनुमा होता है। इसकी शाखाएं कड़ी, मजबूत और अत्यंत विभाजित होती हैं। शाखाएं चक्करदार होती हैं, अर्थात एक गांठ पर कई निकलती हैं। वह प्राय: ऊपर की ओर मुड़ी होती हैं। पत्ते छोटे 'शीथ' जैसे होते हैं। नर पुष्प कई कई एक साथ, छोटी अंडाकार स्पाइकों में लगते हैं। मादा पुष्प एक स्पाइक में केवल 1-2 ही होते हैं। फल 7-10 मिमी लंबा, अंडाकार, लाल रंग का होता है और सरस सहपत्रों में ढका रहता है।

प्राप्ति-स्थान

यह पौधा हिमालय पर्वत की ऊंची, अंदर की, शुष्क श्रेणियों में, प्राय; 2,000-4,000 मी ऊंचाई के स्थानों में होता है। इसकी खेती भी की जाती है।

औषधीय गुण

असमानियां की टहनियों को शरद ऋतु में इकट्ठा करके, सुखाकर औषधि में प्रयोग करते हैं। असमानियां से 'एफेड्रीन' निकलती है यह दमा (विशेषकर श्वासनली की सूजन के कारण हुआ दमा) में लाभप्रद है। दमा के दौरे को शांत करने के लिए औषधि का सेवन मुख से कराते हैं, अथवा इंजेक्शन भी देते हैं। यही औषधि हृदय के लिए बलकारक व उत्तेजक है। यदि हृदय पर निमोनिया, डिप्थीरिया आदि का प्रभाव हो गया हो, तो यह औषधि हृदय की गति को उन्नत करने के लिए अत्यंत उपयोगी सिद्ध हुई है।

यह 'हे-फीवर' नामक रोग, खुजली तथा एलर्जी से उत्पन्न अन्य रोगों में प्रयुक्त होती

है। एफेड्रीन से बनी अनेक औषधियां आजकल काम आती हैं। ये नाक में छिड़कने की औषधियां दमा, साइनोसाइटिस तथा श्लेष्मा की सूजन पर लाभप्रद होती हैं। एफेड्रीन मूत्राशय के लिए हितकर है और इस कारण जिन बच्चों को रात्रि में बिस्तर में पेशाब करने का रोग हो जाता है, उनको लाभ पहुंचाती है।

इसके अधिक सेवन से मतली, अत्यधिक पसीना और त्वचा रोग हो जाते हैं।

अन्य जातियां

असमानियां के वंश की अन्य जाति एफेड्रा माजोर (*Ephedra major* Host) लाहुल में होती है। इसमें असमानियां से भी अधिक एल्केलाइड होते हैं, इस कारण दोनों ही जातियों की शाखाएं मानक औषधि समझी जाती हैं।

औषधि में प्रयोग करने के लिए एफेड्रीन नियमित रूप से मिलती रहे, इसके लिए आवश्यक है कि इन दोनों जातियों की अथवा दो चीनी जातियों एफेड्रा एक्युईसेटिना – *Ephedra equisetina* Bunge, एवं एफेड्रा सिनिका – *Ephedra sinica* Stapf की खेती की जाये। चीन वाली दोनों जातियों में एफेड्रीन की मात्रा भारतीय पौधों से अधिक है।

कश्मीर, पंजाब, हिमाचल प्रदेश व उत्तर प्रदेश की ऊंची पहाड़ियों के क्षेत्र असमानियां वंश के पौधे की खेती के लिए उपयुक्त बताये जाते हैं।

36. लाल दूधी

(एउफ़ोर्बिया)

वैज्ञानिक नाम : **एउफ़ोर्बिआ हीर्टा** *(Euphorbia hirta* L.)
(अस्वीकृत नाम : अनेक पुस्तकों में इसे **एउफ़ोर्बिया पीलूलीफ़रा** के अंतर्गत दिया गया है।) चित्र 11

(कुल – एउफ़ोर्बिएसिए)

अन्य नाम : **संस्कृत** – नागार्जुनी, पूसितोआ;
कन्नड़ – अच्चेगिडा;
गुजराती – दुधेली;
तमिल – अममपच्चे अरिस्सी;
तेलुगु – नानाबला;
बंगला – बरकेरु;
मराठी – मोटी-दूधी;
मलयालम – नीलापाले।

वर्णन

यह एकवर्षीय पौधा होता है, यह कभी कभी सीधा 50 सेमी तक ऊंचा, अथवा कभी आरोही हो जाता है। इसकी शाखाओं पर पीला रोम-सा होता है। पत्ते आमने सामने जोड़े में, 4 सेमी तक लंबे, ऊपर गाढ़े हरे रंग के नीचे केलई से होते हैं। इनके किनारे दंतुर होते हैं। फल सफेद, छोटे एवं पत्तों के कक्ष में लगे छोटे, संवृत गुच्छों में आते हैं। फल 1.2 मिमी व्यास के, रोमिल होते हैं। बीज तिकोने, झुर्रीदार, लाल-भूरे से रंग के होते हैं।

प्राप्ति-स्थान

यह पौधा भारत के सभी मैदानी क्षेत्रों में तथा उष्ण तलहटियों में होता है। यह बेकार स्थानों में प्राय: ही उग आता है।

औषधीय गुण

जिस समय पौधे में फूल व फल आते हैं, उस समय समूचा ही उखाड़कर सुखा लिया जाता है,
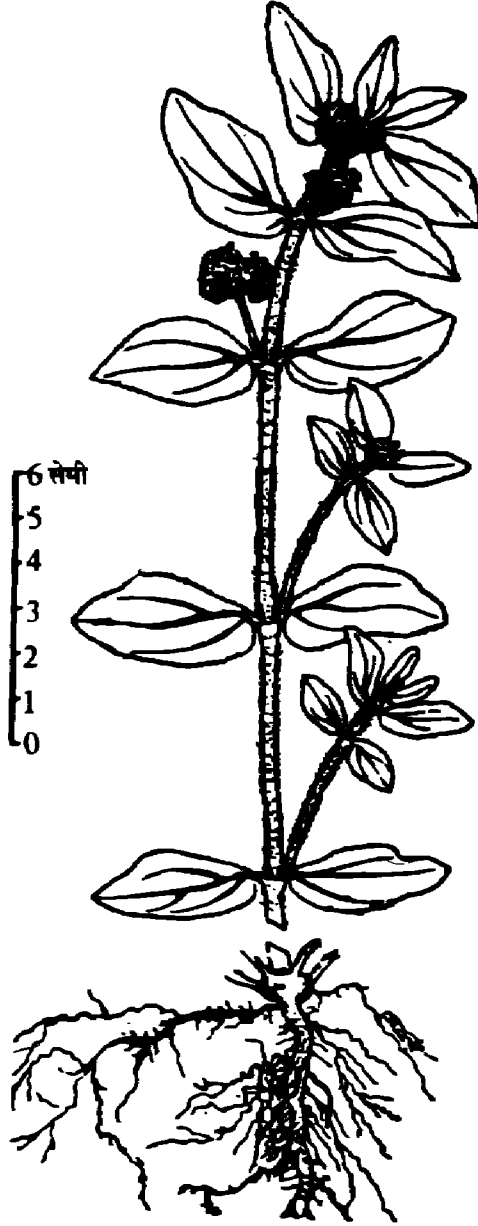
चित्र 11 – लाल दूधी (एउफ्रोर्बिया हीर्टा)
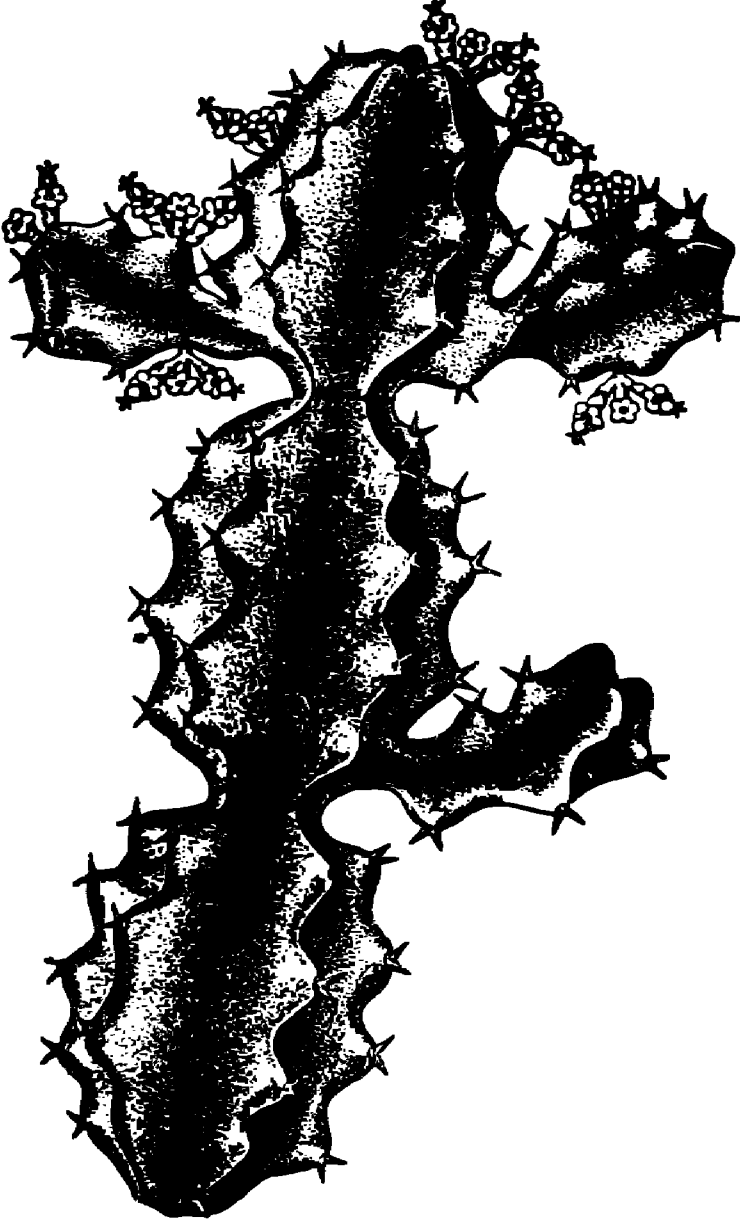
चित्र 12 – त्रिधारी सेहुंद (एउफ़ोर्बिया आंटीक्वोरुम)
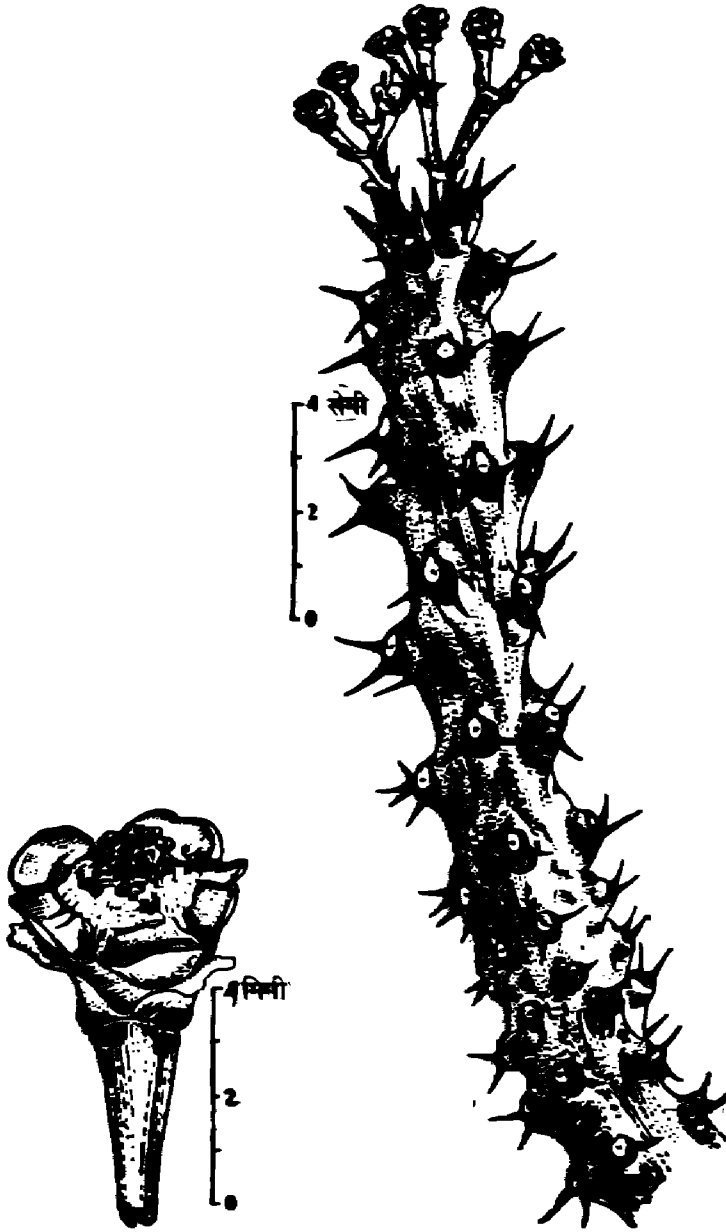
चित्र 13 – थूहर (एउफ़ोर्बिया नेरिईफ़ोलिआ)

यही औषधि में काम आता है।

लाल दूधी में हृदय एवं श्वास की क्रिया को मंद करने का गुण है,यह श्वास नलियों को थोड़ा शिथिल करके आराम पहुंचाती है। यह बच्चों के कृमिरोग में,उदर रोगों में,खांसी एवं दमा में उपयोगी है। इसके सेवन से स्त्रियों के स्तन में दुग्ध की मात्रा बढ़ती है। यह सूजाक तथा जननेंद्रियों के अन्य रोगों में भी लाभप्रद है। पौधे की जड़ें वमन रोकती हैं। अधिक सेवन से पेट में जलन हो जाती है और मतली व कै हो जाती है। पौधे का सफेद रस मस्सों पर लगाते हैं। परीक्षणों द्वारा लाल दूधी में एंटीबैक्टीरियल एवं क्षयरोगनाशक गुणों की पुष्टि हुई है।

अन्य उपयोग

लाल दूधी के पत्तों की भाजी बनाकर खाते हैं।

अन्य जातियां

लाल दूधी के वंश की अन्य जातियां भी औषधि के काम आती हैं। इस वंश में कुछ बड़े वृक्ष सरीखे पौधे भी होते हैं,जैसे थूहर। इनके तने या स्तंभ गोल,सर्पिल या कोणदार,सरस एवं कांटेदार होते हैं,यह कभी कभी नागफनी या कैक्टस जैसे दिखाई देते हैं। इन तनों या शाखाओं में गाढ़ा,दूधिया या पीला रस रहता है जो अत्यंत तीखा,चरपरा और विषैला होता है। केवल सीमित तथा नियमित मात्रा में सेवन करने से इसमें कुछ औषधीय गुण होते हैं। लापरवाही से छूने या सेवन करने से यह रस त्वचा आदि पर तीव्र जलन पैदा कर सकता है। थोड़ी मात्रा में सेवन करने से रेचक होता है। कुछ जातियों का रस पुराने जख्मों के कीड़े मारने के लिए,मस्सों पर तथा त्वचा के रोगों में प्रयुक्त होता है।

त्रिधारी-सेहुंद (चित्र 12. एउफ़ोर्बिया आंटीक्वोरुम – *Euphorbia antiquorum* L. संस्कृत– वज्रकंटक) : यह लगभग समस्त भारत में उष्ण जलवायु वाले क्षेत्रों में होता है। इसके तने 3 अथवा 5 कोणवाले होते हैं। इनका रस जलोदर में प्रयुक्त होता है तथा यह नाड़ियों के लिए बलकारक है।

थूहर (चित्र 13. एउफ़ोर्बिया नेरिईफ़ोलिआ – *Euphorbia neriifolia* L. हिंदी– सेहुंड,संस्कृत– स्नूही) : यह भारत के प्रायद्वीपी भाग में प्राकृत रूप से उगता है। किंतु यह प्रायः ही खेतों की रक्षा के लिए मेंड़ों पर लगाया जाता है और इस प्रकार सारे देश में ही यह पाया जाता है। इसके तने 5 कोण के होते हैं। इसका रस दमा तथा कान दर्द में प्रयुक्त होता है।

काटा-थूहर (एउफ़ोर्बिया नीवूलिआ – *Euphorbia nivulia* Buch. Ham. संस्कृत– पत्रस्नूही) : यह लगभग सारे भारत में– मुख्यतः शुष्क स्थानों में– होता है। इसके तने गोल होते हैं। यह भी खेतों की मेंड़ पर लगाया जाता है। इसके रस में मूत्रल गुण बताये जाते हैं। (बस्तर के आदिवासी इसके सफेद रस को पशुओं के फोड़ों पर लगाते हैं)।

डंडा-थोर (एउफ़ोर्बिया रोयलेआना – *Euphorbia royleana* Boiss.) : यह उत्तर पश्चिम भारत में हिमालय पर्वत के 1,000-1,500 मी ऊंचाई वाले स्थानों में दक्षिणी शुष्क

ढलानों पर होता है। इसके तने व शाखाएं 5 या 7 कोण वाले होते हैं।

सेहुंद (एउफ़ोर्बिया टीरुकल्ली – *Euphorbia tirucalli* L. संस्कृत– वज्रद्रुमा) : यह एक झाड़ीनुमा पौधा या वृक्ष होता है। इसकी शाखाएं गोल, विभाजित और फैली हुई होती हैं। वे अन्य जातियों के पौधों से बहुत पतली होती हैं, इन पर कांटे नहीं होते। यह अफ्रीका का देशज है, किंतु समस्त भारत में, विशेषकर प्रायद्वीपी भाग में तथा पूर्वी प्रांतों में, खेतों की मेंड़ों पर तथा सड़कों के किनारे प्रायः ही लगाया जाता है। पौधे का सफेद रस गठिया के दर्द, दंत रोग आदि में प्रयुक्त होता है। अत्यंत नियमित मात्रा में इसका सेवन होता है।

कट्टीमांडू (तेलुगु) (एउफ़ोर्बिआ बार्नहार्टिई – *Euphorbia barnhartti* Croizat, पुराना नाम – एउफ़ोर्बिया ट्रीगोना) : यह दक्षिण में तथा अंडमान द्वीप में होता है। इसके पत्तों की पुलटिस फोडों पर लगाते हैं।

37. हींग

(आसाफ़िटिडा)

वैज्ञानिक नाम : **फ़ेरुला नार्थेक्स** (*Ferula narthex* Boiss.)

(कुल-अंबेलीफेरिए)

अन्य नाम : **संस्कृत** – बल्हिका, अगूढ़गंध;
उड़िया – हेंगू;
कश्मीरी – यंग, सप;
तमिल – पेरुंगायम;
तेलुगु – इंगुमो;
मराठी, बंगला, गुजराती, कन्नड़ – हींग;
मलयालम – पेरुंगायम।

व्यापार-कार्य में इसे आसाफ़िटिडा कहते हैं क्योंकि हींग के वंश की एक अन्य जाति होती है। फ़ेरुला आसाफ़िटिडा, उससे भी हींग निकलता है।

वर्णन

यह एक बड़ा बहुवर्षीय पौधा होता है, इसकी जड़ें मोटी गाजर जैसी होती हैं। इसमें दो प्रकार के पत्ते होते हैं, नीचे के पत्ते 30-60 सेमी लंबे, अंडाकार होते हैं, ऊपर के पत्ते पतली पालियों में कटे होते हैं। नये पत्ते घने रोमिल होते हैं। फूल छोटे, पीले तथा शाखाओं के शीर्ष पर लगे गुच्छों में आते हैं। फल 8 मिमी लंबा, लगभग 4 मिमी चौड़ा होता है।

प्राप्ति-स्थान

यह पौधा कश्मीर में मिलता है।

औषधीय गुण

पौधों की ताजी जड़ों या प्रकंदों में चीरा लगाने से एक राल (रेज़िन) जैसा खुशबूदार पदार्थ निकलता है यही हींग होता है, और औषधि में काम आता है।

हींग पेट का मरोड़, अपच, अफारा, ऐंठन, हैजा तथा कुकुरखांसी में अत्यंत उपयोगी होता

है। ये ज्ञान तंतुओं तथा श्वास नलिकाओं को उत्तेजित करता है। बच्चों के निमोनिया तथा खांसी आदि में बहुत लाभप्रद है। पेट पर लेप करने से भी यह अंतड़ियों की क्रिया को उत्तेजित करता है। अंतड़ियों में अधिक अफारा आने पर इसका एनीमा भी बताया गया है।

परीक्षणों से ज्ञात हुआ है कि हींग में कुछ शमक या अवसादक गुण भी हैं, और हृदय रोगों में इसके प्रयोग की संभावना बतायी गयी है।

अन्य उपयोग

हींग मसाले के रूप में खाना बनाने में बहुत काम आता है, यह अचार, चटनी आदि में भी डाला जाता है।

अन्य जातियां

फ़ेरुला वंश की कई जातियां – जैसे फ़ेरुला फीटिडा (*Ferula foetida* Regel) तथा फ़ेरुला आसाफ़ीटिडा (*Ferula assafoetida* L.) – मध्य एशियाई देशों (जैसे अफगानिस्तान) में होती हैं। इनसे भी *हींग* निकलता है।

38. गंधपूर्ण

(विंटरग्रीन)

वैज्ञानिक नाम : **गाउल्थेरिया फ्राग्रांटीस्सिमा** *(Gaultheria fragrantissima* Wallich)

(कुल – एरिकेसिए)

अन्य नाम : **हिंदी** – गंधपूरा ;
संस्कृत – हेमंतहरित;
असमिया – जिरहप ।

वर्णन

यह पौधा सदाहरित, लगभग 3 मी ऊंचा, झाड़ीनुमा होता है । तने शाखित होते हैं, उनकी छाल नारंगी या भूरे रंग की होती है । पत्ते 13 सेमी तक लंबे, काफी चौड़े, चर्मिल होते हैं, इनके किनारे दंतुर होते हैं । समूचे पत्ते पर ग्रंथियां होती हैं । फूल छोटे, हल्के रंग के, और पत्तों के कक्ष में लगे छोटे गुच्छों में आते हैं । फल गोल होते हैं, और नीले बाह्यदल से ढके रहते हैं ।

प्राप्ति-स्थान

यह पौधा उत्तरी, पूर्वी एवं दक्षिणी भारत के पर्वतीय क्षत्रों में 1,500-2000 मी ऊंचाई वाले स्थानों में होता है ।

औषधीय गुण

गंधपूर्ण के ताजे पौधे से एक वाष्पशील (वोलेटाइल) तेल निकलता है, इसे गंधपूर्ण का तेल या गंधपूरा का तेल (विंटरग्रीन-आयल) कहते हैं । यही औषधि में काम आता है ।

यह तेल भिन्न प्रकार के वातरोग में उपयोगी है । तेल की मालिश की जाती है । कुछ औषधियों से बने मरहम व तेलों के प्रयोग से त्वचा पर जलन होने लगती है, उनमें गंधपूर्ण का तेल मिलाने से जलन या तो होती ही नहीं, अथवा दूर हो जाती है । इस प्रकार गंधपूर्ण अनेक औषधीय तेलों व मरहमों में प्रयोग होता है । इस तेल से हुकवर्म कृमि नष्ट हो जाते हैं । यह पाचक एवं उत्तेजक भी है ।

परीक्षणों से संकेत मिलता है कि जिन चूहों को थोड़ी मात्रा में, गंधपूर्ण तेल का सेवन कराया गया उनमें कैंसर रोग देर से उत्पन्न किया जा सका, तथा इसके सेवन से (जानवरों में)

कुछ प्रकार की गिल्टी या रसौली ठीक हो गयी।

अन्य उपयोग

गंधपूर्ण का तेल लेमन, सोडा, आदि पेय पदार्थों में, मीठी गोलियों में, दांत के मंजन व पेस्टों आदि में सुगंधि के लिए मिलाया जाता है। मच्छर व अन्य कीड़े मारने या भगाने की अनेक औषधियों में भी यह तेल प्रयुक्त होता है।

इसके पौधे इतने सुंदर होते हैं कि पहाड़ी स्थानों के उद्यानों में यह प्राय: ही शोभा के लिए लगाये जाते हैं।

39. नीलकंठ

(इंडियन जेंशियन)

वैज्ञानिक नाम : **जेंशिआना कुरू** (*Gentiana kurroo* Royle.)

(कुल – जेंशिएनेसिए)

अन्य नाम : **हिंदी** – कुटकी, कमलफूल;
कश्मीरी – नीलकंठी;
गुजराती – पाखानभेद;
बंगला – करू, कुटकी;
(**जौनसार** – करू)

वर्णन

इस बहुवर्षीय पौधे के तने लगभग 10-30 सेमी ऊंचे होते हैं। कई कई पौधे इकट्ठे एक समूह में उगते हैं और उनकी शाखाएं पहले भूमि के समतल बढ़ती हैं, फिर सीधी हो जाती हैं। इसकी जड़ें मोटी होती हैं। नीचे के पत्ते 7-13 सेमी लंबे, ऊपर के 2.5 सेमी तक लंबे व संकरे होते हैं। फूल नीले, 4-5 सेमी लंबे 2-2.5 सेमी व्यास के होते हैं। दलपुंज पर सफेद दाग से होते हैं। फूल अकेले अथवा 2-4 के इकट्ठे गुच्छे में लगते हैं। फल लगभग 2 सेमी लंबे होते हैं।

नीलकंठ के पौधे उत्तर-पश्चिम हिमालय में कश्मीर तथा उसके पास के क्षेत्र में 1,500-3,500 मी ऊंचाई वाले स्थानों में पाये जाते हैं।

औषधीय गुण

इस पौधे के प्रकंद सुखाकर औषधि में काम आते हैं।

नीलकंठ की औषधि क्षुधावर्धक है और अंतड़ियों के पाचक तत्वों के लिए उद्दीपक है। यह अनेक पौष्टिक औषधियों में पड़ती है। इसका स्वाद व गंध अच्छी होती है। इसका अधिक मात्रा में सेवन करने से दस्त हो जाते हैं।

अन्य जातियां

इस वंश की ही एक विदेशी जाति जेंशिआना लूटेआ (*Gentiana lutea* L. अंग्रेजी– येलो-जेंशियन) होती है। इसकी जड़ें बहुत उपयोगी होती हैं। उनका बड़ी मात्रा में

हमारे देश में आयात होता है। हिमालय के उत्तर-पश्चिमी भाग में लगभग 3,000 मी ऊंचाई वाले स्थानों में इसकी खेती भी की जा सकती है।

कुटकी (पीक्रोर्हीजा कुर्रुआ) नामक एक पौधा भी नीलकंठ के स्थान पर प्रयोग किया जा सकता है।

40. मुलेठी

(लिक्वोरिस)

वैज्ञानिक नाम : **ग्लीसीर्रहीजा ग्लाब्रा** (*Glycyrrhiza glabra* L.)

(कुल – पेपीलिओनेसिए)

अन्य नाम : **हिंदी** – मुलहटी, मुलेठी;
संस्कृत – मधुयष्टी;
कन्नड़ – अतिमधुरा, यष्ठिमधु;
तमिल – अतिमधुरम;
तेलुगु – यष्टिमधुकम;
बंगला – जष्टिमधु;
मलयालम – इरत्तिमधुरम।

वर्णन

यह एक बड़ा बूटा या झाड़ीनुमा पौधा होता है जो 1.5 मी तक ऊंचा हो जाता है। इसके पत्ते संयुक्त होते हैं, उनमें 4-7 जोड़े पत्रक होते हैं। फूल गुलाबी या हल्के जामुनी से रंग के, छोटे कक्षीय स्पाइकों में लगते हैं। स्पाइक पत्तों जितनी या उनसे लंबी होती है। फल 1-3 सेमी लंबे, चपटे होते हैं। समूचे फल पर अनेक छोटे कांटे से होते हैं। मूल जड़ में से अनेक छोटी जड़ें निकलती हैं। कुछ किस्मों में जड़ के पास अनेक नये स्तंभ निकल आते हैं, जो भूमिगत ही रहते हैं।

प्राप्ति-स्थान

भारत में इस पौधे की कृषि की जाती है।

औषधीय गुण

जड़ों और भूमिगत तनों को सुखाकर औषधि में प्रयोग करते हैं।

मुलेठी खांसी, गले की खारिश, श्वासनली की सूजन, उदरशूल, क्षयरोग तथा मिरगी के रोग में उपयोगी बताई जाती है। खांसी आदि में तो मुलेठी का एक टुकड़ा चबाने या चूसने

भर से लाभ होता है ।

मुलेठी मूत्रल होती है । इस गुण की तथा एंटीबायोटिक एवं बैक्टीरियानाशक गुणों की परीक्षणों द्वारा पुष्टि हुई है ।

मीठे स्वाद तथा शमक गुण के कारण मुलेठी चटनी तथा शरबत बनाने के काम आती है; और अनेक कड़वी औषधियों तथा गोलियों में मुलेठी मिलाकर उनका कड़वापन छुपा दिया जाता है, जिससे बच्चे ऐसी औषधियां सुविधा से ले सकें । यह अंतड़ियों के जख्मों को भी आराम पहुंचाती है ।

मुलेठी पीसकर घी और शहद में मिलाकर घाव व फोड़ों पर लगाते हैं । पत्तों की पुलटिस लगाने से सिर के स्काल्ड रोग में लाभ होता है ।

अन्य उपयोग

मीठे स्वाद के लिए, पिसी हुई मुलेठी पान में डालकर खाई जाती है ।

कश्मीर, पंजाब, हिमाचल प्रदेश, उत्तर प्रदेश तथा मद्रास प्रांत मुलेठी की खेती के लिए उपयुक्त हैं ।

वनस्पति सर्वेक्षण विभाग के निदेशक रह चुके स्व. डा. हेरमेनगिल्ड संतापाऊ (जिनका जन्म स्पेन में हुआ था, किंतु उन्होंने भारतीय नागरिकता स्वीकार कर ली थी) ने बताया था कि इटली व स्पेन में चावल के खेतों में मुलेठी के पौधे प्रायः ही उग आते हैं । स्कूल के बच्चे बाजार से टाफी या मीठी गोलियां न खरीद कर मुलेठी की ताजी जड़ का टुकड़ा उखाड़कर चूसना पसंद करते हैं ।

41. अनंतमूल

(इंडियन-सारसपारिल्ला)

वैज्ञानिक नाम : **हेमीडेस्मुस ईंडिकस** [*Hemidesmus indicus* (L. Schult)]

(कुल – पेरीप्लोकेसिए)

अन्य नाम : **हिंदी** – हिंदी-सलसा, अनंतमूल;
संस्कृत – नाग-जिह्वा;
गुजराती – धूरीवेल;
तमिल – नन्नारी;
तेलुगु – मुत्तावपुलगमु;
बंगला, उड़िया, मराठी – अनंतमूल;
मलयालम – नन्नारी, कोड्डुवेलि।
(**मध्य-भारत** – छोटी-दूधी, काली-दूधी।)

वर्णन

यह एक बहुवर्षीय आरोही या विसर्पी पौधा होता है, इसकी मूल कड़ी एवं सुगंधित होती है। तने मुलायम, अरोमिल होते हैं। पत्तों का आकार बहुत भिन्न भिन्न होता है, कुछ छोटे व चौड़े, कुछ बड़े, संकरे आदि आकार के होते हैं। वह प्रायः 5-10 सेमी लंबे होते हैं; चौड़ाई 0. 5-4 सेमी तक होती है। पत्ते हल्के हरे या पीले से होते हैं, उन पर सफेद दाग होते हैं। वह नीचे रोमिल होते हैं। फूल अत्यंत छोटे, हरे, छोटे गुच्छों में लगते हैं। दो फल एक साथ लगते हैं, वह 10-14 सेमी लंबे, हरे, संकरे निशिताग्र होते हैं। बीज छोटे, काले होते हैं, उनके शीर्ष पर सफेद रोमगुच्छ होता है। पौधे के सभी भागों से सफेद दूध-सा रस निकलता है।

प्राप्ति -स्थान

यह पौधा समस्त भारत में मिलता है।

औषधीय गुण

अनंतमूल की जड़ों को सुखाकर, औषधि में प्रयोग करते है।

यह औषधि ज्वर, त्वचा रोग, भूख न लगना, आतशक, श्वेत प्रदर, तथा मूत्र रोगों में लाभदायक है। इसका मूत्रल गुण परीक्षणों द्वारा सिद्ध हुआ है। यह औषधि रक्त को शुद्ध करने के लिए तथा गठिया में बहुत प्रयोग होती है। अस्पतालों में रोगियों पर किये गये परीक्षणों द्वारा इस बात की पुष्टि की गयी है कि अनंतमूल, स्मीलाक्स के पौधों से प्राप्त औषधि के स्थान पर भली-भांति प्रयोग की जा सकती है।

अन्य उपयोग

अनंतमूल की पतली पत्तियों वाली किस्म के ताजे पत्ते चबाने से शरीर में ताजगी आती है।

42. इन्द्रजौ

(कुरची)

वैज्ञानिक नाम : **होलरहेना आंटीडीसेंटेरिका** [*Holarrhena antidysenterica* (Roth) A. DC]

(कुल – अपोसाइनेसिए)

अन्य नाम : **हिंदी** – कोड़ई, कुरची;
संस्कृत – कुटज, कालिंग;
असमिया – दुतखुरी;
उड़िया – खुरनी, खेड़वा;
कन्नड़ – हाले, कोडच्चगा;
गुजराती – कुड़ा;
तमिल – इंद्रबन;
तेलुगु – पालाकोडसा;
पंजाबी – केवाड़;
मराठी – गाल, कोड़या, दुधारी;
मलयालम – कोडगप्पाले ।

इस पौधे के वैज्ञानिक नाम में आंटीडीसेंटेरिका शब्द इसके मुख्य औषधीय गुण की ओर संकेत करता है ।

वर्णन

यह एक बड़ा झाड़ीनुमा पौधा अथवा छोटा वृक्ष होता है, कभी कभी यह 10 मी तक ऊंचा हो जाता है । इसके पत्ते 10-30 सेमी लंबे, अंडाकार, व पतले होते हैं । शिराएं उभरी हुई होती हैं, और स्पष्ट चमकती हैं । पत्तों के डंठल छोटे होते हैं । फूल सफेद, सुगंधित, 1-1.5 सेमी व्यास के होते हैं । यह शाखाओं के शीर्ष पर लगे बड़े गुच्छों में आते हैं । फलियां 20-45 सेमी लंबी, केवल 6-8 मिमी मोटी होती हैं, उनका रंग गहरा भूरा होता है और उन पर सफेद दाने से होते हैं । बीज लगभग 1 सेमी लंबे होते हैं, उनके शीर्ष पर 2-2.5 सेमी लंबा, भूरा रोमगुच्छ होता है । पौधे के किसी भी भाग को काटने पर दूध-सा सफेद रस निकलता है ।

प्राप्ति-स्थान

इन्द्रजौ के पौधे 1,200 मी ऊंचाई तक के स्थानों में लगभग समस्त भारत में मिलते हैं। मध्य प्रदेश और महाराष्ट्र के वनों में प्रायः खुले स्थानों में या ऊंचे वृक्षों के नीचे सहस्रों पौधे देखे गये हैं।

औषधीय गुण

वृक्ष की छाल सुखाकर औषधि के काम आती है। इस औषधि का मुख्य उपयोग एमीबा-पेचिश में है। छाल का क्वाथ बनाकर प्रयोग किया जाता है, अथवा उसमें कुछ अन्य औषधियां मिलाकर सेवन किया जाता है। छाल में पौष्टिक और ज्वरनाशक गुण भी हैं। छाल में 'कोनेसीन' नामक एक एल्केलाइड होता है, जो क्षय रोग के जीवाणुओं (टुबरकुलर बेसिलाई) की बढ़ोतरी कम कर देता है।

इन्द्रजौ के बीजों में भी कुछ ऐसे एल्केलाइड हैं जो पेचिश में लाभप्रद हैं। पत्तों में कुछ औषधीय गुण बताये जाते हैं।

अन्य उपयोग

अनुपजाऊ भूमि पर उगाने के लिए यह वृक्ष अच्छा है। कटान किए हुए जंगलों में तो यह स्वयं ही उग आता है और प्रायः सर्वप्रथम उग आने वाले पौधों में से है। इसकी लकड़ी नाना प्रकार की घरेलू वस्तुएं– जैसे खिलौने, छोटे संदूक, डिब्बे, कलम, कंघी तथा छपाई के ब्लाक, तस्वीरों के फ्रेम आदि बनाने के लिए उपयुक्त है।

43. चालमोगरा

वैज्ञानिक नाम : **हीड्नोकार्पुस कुर्जिई** [*Hydnocarpus kurzii* (King) Warb.]

(कुल – फ्लेकूर्शिएसिए)

अन्य नाम : **हिंदी** – चालमोगरा;
असमिया – लमटनी;
बंगला – चौलमूगरा, दालमूगरी;
मलयालम – मरवेट्टी ।

वर्णन

यह वृक्ष प्रायः 10-15 मी ऊंचा होता है, कभी कभी अधिक भी हो जाता है । इसका मुख्य तना लंबा होता है, शाखाएं प्रायः नीचे की ओर झुकी हुई होती हैं । पत्ते लगभग 20 सेमी लंबे, निशिताग्र और चर्मिल होते हैं । फल छोटे व पीले होते हैं और कक्षीय गुच्छों में आते हैं । फल 6-7 सेमी व्यास का छोटी गेंद-सा गोल, भूरे रंग का होता है, इसमें कई बीज होते हैं ।

प्राप्ति-स्थान

यह वृक्ष असम और त्रिपुरा के सदाहरित वनों में होता है । कुछ स्थानों पर तो यह बहुसंख्या में होता है ।

औषधीय गुण

ताजे-पके बीजों का तेल औषधि के काम आता है ।

तेल कुष्ठ रोग में उपयोगी है । पहले तो तेल का सेवन कराया जाता था, किंतु अब इस तेल की बनी औषधियां इंजेक्शनों द्वारा शरीर में पहुंचाई जाती हैं । इस वृक्ष की छाल में टैनीन होते हैं, इस कारण यह छाल ज्वर में लाभप्रद समझी जाती है ।

अन्य उपयोग

चालमोगरा की खली खाद के काम आती है । कुछ जानवर इसके फल खा लेते हैं, किंतु ऐसे

जानवरों का मांस खाना हानिकारक होता है। चालमोगरा के फलों के विष से मारी हुई या बेहोश की हुई मछलियां भी नहीं खानी चाहिए; ये हानिकारक हो सकती हैं।

अन्य जातियां

चालमोगरा के वंश की एक अन्य जाति गरुड़फल (हीड्नोकार्पुस लाऊरीफोलिया *Hydnocarpus laurifolia* (Dennst.) Sleumer पुराना अस्वीकृत नाम – हीड्नोकार्पुस वाइटियाना; मराठी– कटुकवथ; कन्नड़– तोरत्ति; तमिल– मरावेट्टी) पश्चिमी घाट में पाई जाती है। इस वृक्ष के बीज से प्राप्त तेल औषधि में काम आता है। इसमें वही गुण होते हैं जो चालमोगरा के तेल में। यह कुष्ठ रोग में लगाया जाता है, और कोढ़ के नोड्युल्स को कम कर देता है। तेल गठिया, मोच, सूजन आदि पर भी उपयोगी है। परीक्षणों से इसके बैक्टीरियानाशक गुणों की पुष्टि हुई है।

44. तालमखाना

वैज्ञानिक नाम : **हीग्रोफ़िला आउरीकुलाटा** [*Hygrophila auriculata* (Schum) Heine]
(अस्वीकृत नाम : **हीग्रोफ़िला स्पीनोसा, आस्टेकांथा लोंगीफोलिआ**)

(कुल – अकांथेसिए)

अन्य नाम : **हिंदी** – कुलियाकांटा;
संस्कृत – कोकिलाक्ष;
कन्नड़ – कोड़वंके;
गुजराती – एखरो;
तमिल – निर्मुल्ली;
तेलुगु – नीरुगुब्बी;
बंगला – कुलेखाड़ा, कल्पकांटा;
मराठी – तामिलखाना;
मलयालम – वायलचुल्ली ।

वर्णन

यह पौधा 60-150 सेमी ऊंचा होता है, इसके तने चौकोर होते हैं । एक पौधे में प्राय: एक सीधा तना होता है, शाखाएं नहीं होतीं । तना (विशेषकर गांठ के पास) रोमिल होता है । प्रत्येक गांठ पर 6 पत्ते चक्राकार लगते हैं; प्रत्येक पत्ते के कक्ष में एक नोकीला कांटा होता है, जिनके कारण पौधा अत्यंत कंटीला होता है । फूल नीले या बैंजनी रंग के, लगभग 3 सेमी लंबे, द्विओष्ठी होते हैं; प्रत्येक गांठ पर पत्तों के कक्ष में 8 फूल होते हैं ।

प्राप्ति-स्थान

तालमखाना कीचड़ आदि नम स्थानों में सारे भारत में मिलता है । यह प्राय: सड़क के किनारे की सूखी नालियों में, उथले सूखे तालाबों में और गड्ढों में उग आता है ।

औषधीय गुण

तालमखाना का मूल सहित समूचा पौधा औषधि में काम आता है ।

यह जलोदर, पीलिया, गठिया और मूत्र एवं जननेंद्रियों के रोगों में काम आता है । पौधे

के बीज सूज़ाक व आतशक आदि रति संबंधी रोगों में उपयोगी बताये जाते हैं। पौधे में मूत्रविरेचक गुण हैं। अलग बीज व जड़ में भी यही गुण हैं। तालमखाना के पत्ते खांसी, एवं मूत्र में धातु जाने के रोग में उपयोगी हैं।

45. खुरासानी-अजवायन

(इंडियन-हेनबेन)

वैज्ञानिक नाम : **हिओस्सिआमुस नीगेर** (*Hyoscyamus niger* L.) रंगीन प्लेट II

(कुल – सोलेनेसिए)

अन्य नाम : **संस्कृत** – मदकारिणी, पारसीकय;
गुजराती, बंगला – खुरासानी-अजवायन;
मराठी – खुरासानी-ओवा ।

वर्णन

यह लगभग 1 मी ऊंचा, एकवर्षी अथवा द्विवर्षी पौधा होता है । समूचे पौधे पर घनका ग्रंथिल रोम होता है, और पौधे में दुर्गंध होती है । नीचे के पत्ते 15-20 सेमी लंबे, किनारों पर दंतुर होते हैं । ऊपर के पत्ते छोटे अनेक पालियों में कटे होते हैं । फूल 2-3 सेमी व्यास के होते हैं, दलपुंज केलई रंग का होता है, किंतु उस पर बैंजनी धारियां-सी होती हैं । कुछ फूल शाखाओं के शीर्ष पर लंबी स्पाइकों में लगते हैं, कुछ अलग । शाखाएं निकलने के स्थान पर एक फल 1.3 सेमी व्यास का गोल-सा होता है ।

प्राप्ति-स्थान

यह पौधा हिमालय के पश्चिमी प्रदेशों में, कश्मीर से गढ़वाल तक, प्राय; 1,500 से 3,000 मी ऊंचाई के स्थानों में मिलता है । यह प्राय: बस्तियों के निकट बेकार स्थानों में उग आता है । कश्मीर, पंजाब, उत्तर प्रदेश, महाराष्ट्र, नीलगिरी तथा अन्य स्थानों में इसकी खेती की गयी है ।

औषधीय गुण

पौधे के फूलने के तुरंत बाद पत्ते और फूलों वाली ऊपर की शाखाएं इकट्ठी करके सुखा ली जाती हैं । ये ही खुरासानी-अजवायन नाम से औषधि में प्रयुक्त होती हैं ।

इस औषधि में वही गुण हैं जो अंगूरशफा (बेल्लाडोन्ना) में । यह निद्रा लाने के लिए, मांसपेशियों की ऐंठन दूर करने के लिए एवं हिस्टीरिया आदि दौरों में, ज्ञान तंतुओं की उत्तेजना को शांत करने के लिए लाभप्रद है । यह खांसी को भी शांत करती है, तथा एट्रोपीन की तरह

आंख की पुतली को फैला देती है।

पौधे के बीज में भी औषधीय गुण होते हैं। दर्द को दूर करने के लिए बीज पीसकर लगाते हैं।

यह पौधा हिमालय के उत्तर-पश्चिमी क्षेत्रों में भली भांति बोया जा सकता है।

अन्य जातियां

इसी वंश की एक जाति इजिप्शियन हेनबेन (हिओस्सिआमुस मूटीकुस *Hyoscyamus muticus* L.) कश्मीर में बोई जाती है। इसमें भारत के अन्य भागों में होने वाली जाति से अधिक एल्केलाइड होते हैं। इसमें स्वापक (नारकोटिक) गुण भी अधिक होते हैं, और नशे के लिए इसके पत्तों का, सुलफा की तरह, धूम्रपान करते हैं।

46. काला-दाना

वैज्ञानिक नाम : **ईपोमेआ नील** [*Ipomoea nil* (L.) Roth]
(अस्वीकृत नाम; **ईपोमेआ हेडेरासेआ**)

(कुल--कनवॉलवुलेसिए)

अन्य नाम : **हिंदी** – नील-कलमी;
संस्कृत – कृष्ण-बीज;
उड़िया – कणिखोंडो;
गुजराती – काला कुंपान, त्रिकोणी-पोटियाल;
तमिल – सिरीखी;
तेलुगु – तीरीकि;
बंगला, गुजराती – काला-दाना;
मराठी – नील पुष्पी;
(नैनीताल – भोरड)।

इस पौधे के वैज्ञानिक नाम में नील शब्द फूलों के नीले रंग पर आधारित है।

वर्णन

यह एकवर्षी वल्लरी पौधा होता है, इसके तने पर हल्का रोम होता है। पत्ते 5-12 सेमी व्यास के, अंडाकार और 3 पालियों में कटे होते हैं। फूल 4-5 सेमी लंबे कीपाकार, नीले रंग के होते हैं। फूल के नीचे का भाग कुछ नारंगी रंग का-सा होता है। कई फूल एक साथ छोटे गुच्छों में लगते हैं। फूल जब तक शाख पर रहते हैं उनका रंग नीला होता है, तोड़ने पर वे शीघ्र ही बैंजनी रंग के हो जाते हैं। इसलिए बहुत-सी पुस्तकों में भूल से फूलों का रंग बैंजनी लिखा है। फल 8 मिमी व्यास का, गोल या अंडाकार होता है। बीज अत्यंत छोटे और अरोमिल होते हैं।

प्राप्ति-स्थान

यह पौधा 1,800 मी ऊंचाई तक के स्थानों में लगभग समस्त भारत में होता है। यह प्राकृत रूप से भी उगता है और लगाया भी जाता है।

चित्र 14 – काला-दाना (ईपोमेआ नील)

चित्र 15 – **पंचपत्री** (ईपोमेआ पेसटिग्रिडस)
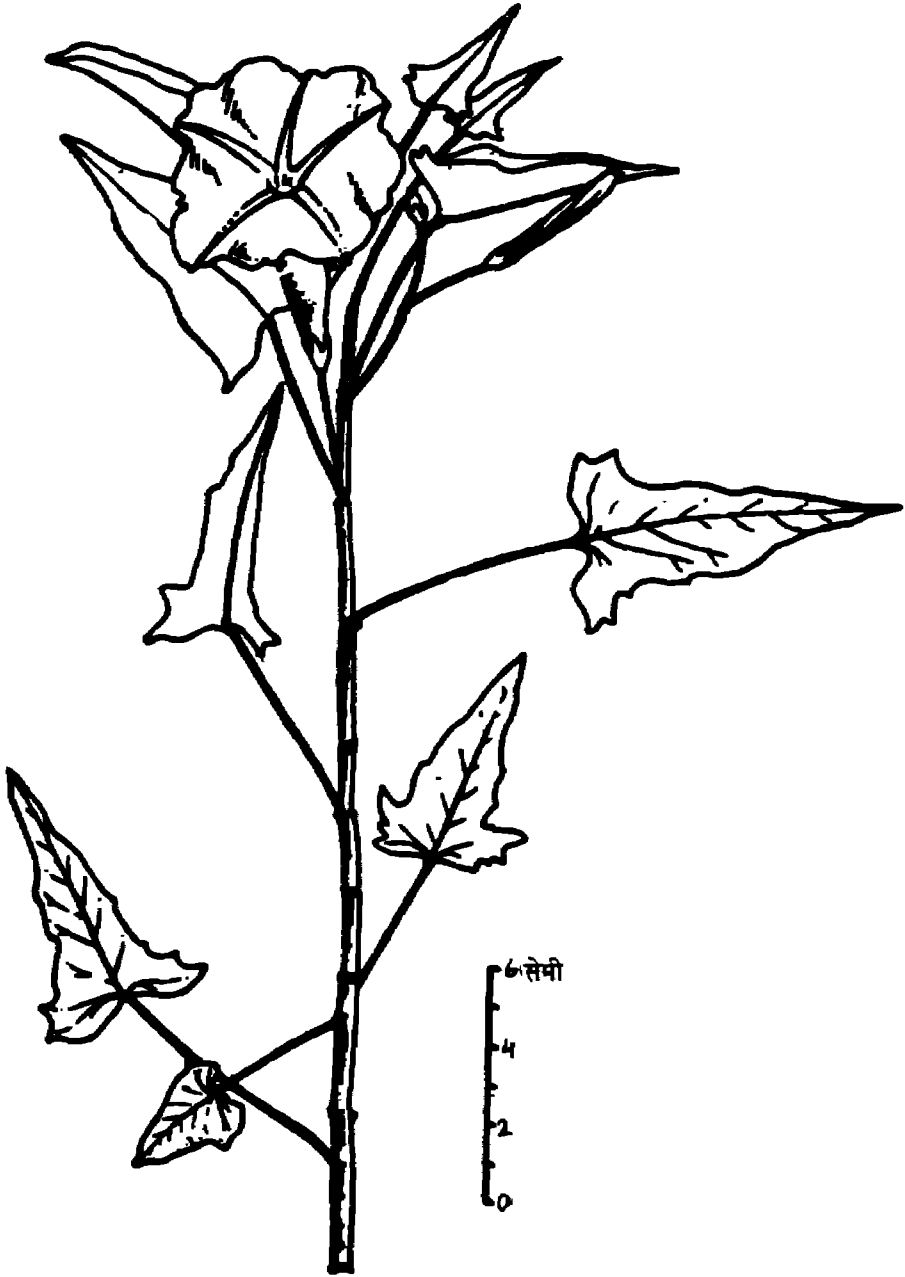
चित्र 16 – **कलमीशाक** (ईपोमेआ आक्वाटिका)
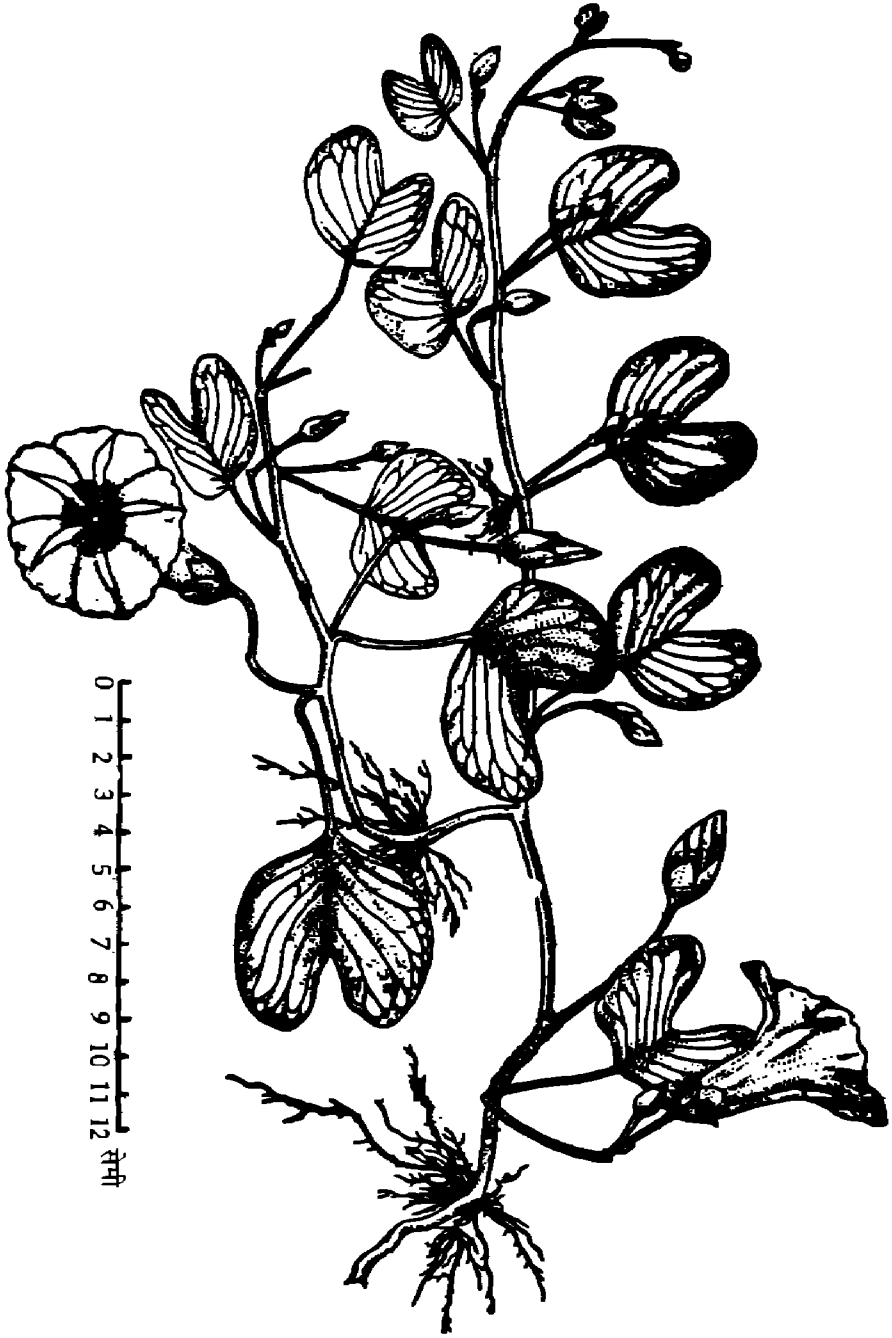
चित्र 17 – **दोपत्तीलता** (ईपोमेआ पेसकाप्रे)

औषधीय गुण

पौधे के बीज सुखाकर औषधि में प्रयोग करते हैं।

यह रेचक होते हैं। अधिक सेवन से यह उदर में जलन पैदा करते हैं।

अन्य उपयोग

पौधों के ताजे फलों की भाजी बनाई जाती है। सुंदर फूलों के कारण यह पौधा प्राय: ही उद्यानों में लगाया जाता है।

अन्य जातियां

काला-दाना के वंश की अन्य जातियां औषधि में प्रयुक्त होती हैं। इनमें कुछ भारत में प्राकृत रूप से उगती हैं,कुछ बोयी जाती हैं। निम्न पौधों में रेचक गुण होते हैं।

पंचपत्री (चित्र 15 – इपोमेआ पेसटिग्रिडस – *Ipomoea pestigrids* L,. हिंदी– घिआ-बाटी; मध्य प्रदेश – बड़ी-पासवी) : इसकी जड़ों में रेचक तत्व होते हैं।

कलमीशाक (चित्र 16 – इपोमेआ आक्वाटिका – *Ipomoea aquatica* Forsk, अंग्रेजी– स्वैंप कैबेज; पंजाबी– सोनार्ली का साग) : इस पौधे का रस रेचक होता है।

दोपत्तीलता डचित्र 17 – इपोमेआ पेसकाप्रे – *Ipomoea pescaprai* (L.) Sweet]: इसके पौधे का रस रेचक है।

कामलता (ईपोमेआ क्वामोक्लिट – *Ipomoea quomoclit* L. बंगला– तोरुंमला; अंग्रेजी– इंडियन पिंक) इसके समूचे पौधे का रस रेचक होता है।

ईपोमेआ पुर्पुरिया [*Ipomoea purpurea* (L.) Roth अंग्रेजी– मार्निंग- ग्लोरी] तथा ईपोमेआ उन्नीफ्लोरा (*Ipomoea uniflora* Roem et Schult) के पौधे का रस तथा ईपोमेआ काइरिका [*Ipomoea cairica* (L.) Sweet अंग्रेजी– रेलवे क्रीपर] के बीज में रेचक गुण बताये जाते हैं।

(बस्तर के आदिवासी कलमीशाक के फूल मसलकर उनका रस सूजी हुई आंखें ठीक करने के लिए आंखों में डालते हैं।)

ईपोमेआ पूर्गा *(Ipomoea purga* Heyne) जिसका अब सही नाम एक्सोगोनिउम पुर्गा *(Exogonium purga* Benth.) है,की मोटी जड़ें रेचक होती हैं। यह पौधा अमेरिका का देशज है। यह भारत में, विशेषकर दक्षिण एवं पूर्वी भागों में, उद्यानों में शोभा के लिए लगाया जाता है। इस औषधि के स्थान पर, भारत में होने वाली जातियों से भी भली भांति काम चल जाता है।

47. मेहंदी

(हेन्ना)

वैज्ञानिक नाम : **लॉसोनिआ इनेर्मिस** (*Lawsonia inermis* L.)
(अस्वीकृत नाम : **लॉसोनिआ आल्बा**)

(कुल – लाइथ्रेसिए)

अन्य नाम : **संस्कृत** – मेंदिका, रक्तगर्भा;
उड़िया – बेंजाति;
कन्नड़ – गोरंटी, मैलांची;
कश्मीरी – मोहुज;
गुजराती, बंगला, मराठी – मेहंदी;
तमिल – मुल्लुगोरांटला मरिथोंडी;
तेलुगु – गोरंटी;
पंजाबी – हिना;
मलयालम – मयीलांची ।

वर्णन

मेहंदी का पौधा मझोला या बड़ा, अत्यंत शाखित झाड़ीनुमा होता है, कभी कभी छोटे वृक्ष जैसा भी हो जाता है । इसकी शाखाएं चौकोर होती हैं और प्राय: शीर्ष पर नुकीली होती हैं । पत्ते 2-3 सेमी लंबे, निशिताग्र और नुकीले होते हैं, वह आमने सामने जोड़े में लगते हैं । फूल छोटे, सफेद, या गुलाबी-से और सुगंधित होते हैं, और शाखाओं के शीर्ष पर बहुत बड़े गुच्छों में लगते हैं । फल मटर के दाने के बराबर गोल होता है । उसमें कई बीज होते हैं ।

मेहंदी के पौधे भारत के कई प्रांतों में मिलते हैं । यह प्रायद्वीपी भाग के शुष्क क्षेत्रों में अधिक होते हैं । यह बंगलों, उद्यानों, आदि की हेज या मेंड़ पर लगाने के लिए बहुत उपयुक्त समझे जाते हैं और इस प्रकार प्राय: ही मेहंदी का रोपण किया जाता है । पंजाब, गुजरात, मध्य प्रदेश तथा राजस्थान आदि में इसकी खेती भी की जाती है ।

औषधीय गुण

मेहंदी के पत्तों में औषधीय गुण होते हैं । वह स्तंभक होते हैं और त्वचा रोगों की रोकथाम के

लिए प्रयोग किये जाते हैं। पत्ते पीसकर जख्म, जले के घाव तथा त्वचा के रोगों पर लगाये जाते हैं। पत्तों का क्वाथ गले की खारिश (गलदाह) में गरारे करने के काम आता है। सिरदर्द व पैरों के तलुवों की जलन आदि में पत्तों को पीसकर प्रायः ही लगाते हैं।

मेहंदी के पत्तों का क्षय रोग के तथा कुछ अन्य रोगों के जीवाणुओं पर मियादी ज्वर में तथा रक्तस्राव में भी कुछ प्रभाव बताते हैं। किंतु अभी यह इस रूप में प्रयुक्त नहीं हुए हैं।

पौधे की छाल व बीज भी आयुर्वेद एवं यूनानी इलाज में औषधीय बताये गये हैं।

अन्य उपयोग

मेहंदी का मुख्य उपयोग तो इसके पत्तों से प्राप्त सुंदर नारंगी रंग का है, जिससे शरीर के भिन्न अंग, दाढ़ी, सिर के बाल, जानवरों की पूंछें आदि रंगी जाती हैं। मेहंदी से प्राप्त रंग अन्य वस्तुओं के साथ मिलाकर कपड़ा रंगने के भी काम आता है।

फूलों से प्राप्त तेल सुगंधित होता है, और इनका इत्र सुगंध के लिए तथा नाना वस्तुओं को सुगंधित करने के लिए प्रयोग होता है।

48. नरसल

(लोबेलिआ)

वैज्ञानिक नाम : **लोबेलिआ नीकोटिनेफोलिआ** (*Lobelia nicotinaefolia* Heyne ex Roth)

(कुल – लोबीलिएसिए)

अन्य नाम : **संस्कृत** – देवनाल, विभीषण;
कन्नड़ – काडुहोगे-सोप्पले;
गुजराती – नालि;
तमिल, मलयालम – काट्टुपुकैला;
तेलुगु – अदारिपोगकू;
बंगला – बनतमाकू;
मराठी – देवनाल।

क्योंकि इस पौधे के पत्ते तंबाकू जैसे होते हैं, वैज्ञानिक नाम में नीकोटिनेफोलिआ शब्द दिया गया है। तंबाकू का नाम नीकोटिआना टाबाकुम है।

वर्णन

नरसल का पौधा 3-5 मी ऊंचा होता है, इसका तना मोटा, खोखला तथा सीधा अथवा कभी कभी केवल ऊपरी भाग में शाखित होता है। पत्ते बहुत बड़े होते हैं, नीचे वाले पत्ते 45 सेमी तक लंबे होते हैं, ऊपर के पत्ते छोटे होते जाते हैं। पत्तों के किनारे सीधे व बीच की नस मोटी एवं सफेद होती है। फूल बड़े और सफेद होते हैं, वह तने के शीर्ष पर लगे बहुत बड़े गुच्छों में आते हैं। फल 8 मिमी व्यास का गोला-सा होता है, उसमें अनेक बीज छोटे पीले या भूरे-से होते हैं।

प्राप्ति स्थान

नरसल भारत के प्रायद्वीपी भाग में पहाड़ियों और उनके आसपास के मैदानी क्षेत्र में होता है।

औषधीय गुण

नरसल के पौधे की जड़ को छोड़कर शेष सब भाग अक्तूबर-नवंबर मास में एकत्रित कर लिये

जाते हैं, और छाया में रखकर सुखा लिये जाते हैं। यही औषधि में काम आते हैं।

इस औषधि में लगभग वही गुण होते हैं जो 'निकोटिन' में। यह दमा व श्वासनली की सूजन में लाभप्रद है। इसके सेवन से पसीना आ जाता है और मतली आकर कै हो जाती है, इससे दमे की खांसी में शांति पड़ जाती है। यह औषधि हानिकारक भी हो सकती है। इसके सेवन के बाद यदि कै न हो और औषधि शरीर में ही पच जाये, तो इसके विषैले पदार्थ अत्यंत हानिकारक हो सकते हैं। अधिक सेवन से मृत्यु भी हो सकती है।

नरसल में 'लोबेलिन' नामक एल्केलाइड होता है, यह श्वास क्रिया को उन्नत करता है। अत्यधिक नशीली वस्तुओं के सेवन से, एनीस्थीसिया से, अथवा अन्य किन्हीं कारणों से श्वास आना बंद हो जाये या मंद हो जाये, तो 'लोबेलिन' के सेवन से फिर आरंभ हो जाता है।

नरसल के तने, शाखाओं व पत्तों से एक सफेद रस निकलता है जिसे त्वचा पर लगाने से फफोले पड़ जाते हैं। कदाचित नरसल के सूखे पौधों से भी श्लेष्म में (नाक और गले में) तीव्र जलन पैदा हो जाती है। वन में पौधे इकट्ठा करते समय प्रायः कुली नरसल के पौधों के पास भी नहीं जाना चाहते (स्व. डा. संतापाऊ द्वारा प्राप्त सूचना के आधार पर)।

अन्य जातियां

नरसल के वंश की एक जाति लोबेलिआ इंफ्लाटा *(Lobelia inflata)* अमेरिका की देशज है। इसके पौधे भारत में उगाने का प्रयत्न किया जा रहा है। भारत का प्रायद्वीपी भाग तथा असम इसकी खेती के लिए उपयुक्त बताए गये हैं। लोबेलिआ (जिससे 'लोबेलिन' निकलती है) का भारत में आयात होता है। भारत में होनेवाली नरसल से प्राप्त 'लोबेलिन' भी संतोषजनक है।

लोबेलिआ वंश की कुछ और जातियां भी भारत में पाई जाती हैं। वे औषधि में उपयोगी नहीं होतीं।

49. महुआ

वैज्ञानिक नाम : **माधूका ईंडिका** *(Madhuca indica* Gmel.)
(अस्वीकृत नाम : **बास्सिआ लाटीफोलिआ)** चित्र 18

(कुल – सपोटेसिए)

अन्य नाम : **हिंदी, बंगाली, मराठी** – महुआ;
संस्कृत – मधुका, वनप्रस्थ;
उड़िया – मोहुका;
कन्नड़ – इप्पे;
गुजराती – महुडो;
तमिल – इलुपाई;
तेलुगु – इप्पा;
मलयालम – पूनम, मधु;
संथाल – मातकोम।

वर्णन

महुआ का वृक्ष पतझड़ी होता है। वृक्ष तो काफी बड़ा होता है, किंतु उसका मुख्य तना छोटा होता है और छत्र तथा शाखाएं बहुत फैले हुए होते हैं। पत्ते 12-25 सेमी लंबे, मोटे चीमड़, निशिताग्र होते हैं। पत्तों की शिराएं मोटी होती हैं। फूल छोटे, गूदेदार पीले या गेहुंए रंग के शाखाओं के शीर्ष के निकट घने गुच्छों में लगते हैं। फूलों के डंठल नीचे की ओर मुड़े रहते हैं, उन पर घनका भूरा रोम होता है। फल 2.5-5 सेमी लंबा, सरस, हरे रंग का होता है। बीज भूरे या कत्थई रंग के चमकीले, 2.5-3.5 सेमी लंबे होते हैं।

प्राप्ति-स्थान

महुआ भारत के लगभग सभी मैदानी प्रदेशों में, अथवा 1,200 मी ऊंचाई तक के स्थानों में निचली पहाड़ियों पर होता है। यह प्रायद्वीपी भाग में तथा हिमालय की तलहटियों में बहुत होता है और कुछ स्थानों पर तो वनों में अधिकांश वृक्ष महुआ के ही होते हैं।

औषधीय गुण

महुआ की छाल, पत्ते, फूल व बीज सभी औषधि में काम आते हैं।

चित्र 18 – महुआ (माधूका इंडिका)

छाल का क्वाथ खुजली पर, मसूड़ों में खून आने पर तथा फोड़ों पर लगाया जाता है। मधुमेह रोग में इसका सेवन भी कराते हैं।

पत्ते स्तंभक होते हैं, उनकी भस्म घी में मिलाकर जले के जख्मों पर तथा सिर के 'स्काल्ड' रोग पर लगाते हैं।

फूल खांसी और श्वास नली की सूजन में उपयोगी हैं। वे शीतल और पौष्टिक होते हैं। फूलों से बनाई गई मदिरा भी पौष्टिक कही जाती है। फूलों में बैक्टीरियानाशक गुण होते हैं महुआ के बीज स्तनों में दुग्ध को बनाते और उसका प्रवाह बढ़ाते हैं। बीज से प्राप्त तेल त्वचा-रोगों पर लगाया जाता है, वह रेचक भी होता है।

अन्य उपयोग

महुआ के फूल कच्चे ही अथवा पकाकर खाये जाते हैं, किंतु उनका अधिक सेवन हानिकारक है। फूलों से मदिरा, एल्कोहल, सिरका, शर्बत, जैम आदि बनाये जाते हैं।

महुआ का तेल साबुन बनाने व खाना पकाने के काम आता है, यह कभी कभी पशुओं को भी खिलाया जाता है। केंचुओं से बचाने के लिए इसका लेपन टेनिस के कोर्टों में भी किया जाता है। महुआ की लकड़ी नाना प्रकार से उपयोगी है।

अन्य जातियां

महुआ के वंश की एक अन्य जाति माधूका लोंगीफ़ोलिआ *(Madhuca longifolia* Koening McBr. जिसका पुराना नाम *बास्सिआ लोंगीफ़ोलिआ* था) उन्हीं देशी नामों से पुकारी जाती है जिनमे महुआ। यह वृक्ष भारतीय प्रायद्वीप में होता है। इसके भिन्न भाग उस ही प्रकार काम आते हैं जैसे महुआ के। इस कारण भारत के मानक औषध कोश में दोनों ही जातियों का उल्लेख है।

50. कामेला

वैज्ञानिक नाम : **माल्लोटुस फ़िलीप्पेंसिस** [*Mallotus Philippensis* (Lank.) Muell. – Arg.]

(कुल – एउफोर्बिएसिए)

अन्य नाम : **हिंदी** – सेंदूरी, रोहिनी;
संस्कृत – शेंदूरी;
असमिया – कमलगुंडी'
कन्नड़ – कुंकुममरा, रोणंती, केसलई;
गुजराती – कोपिलपोड़ि;
तेलुगु – कुंकुम;
बंगला – कमलागुंडि, रैनी;
मराठी – कपीला, शेंदरी;
मलयालम – कपीला, कुंकुम।
(**बिहार, सिंगभूम** – गसर्ब; **तिन्नेवली**–कलुपत्ती)।

वर्णन

कामेला का वृक्ष छोटे आकार का या मझोला और सदाहरित होता है। कभी कभी यह अत्यंत शाखित झाड़ीनुमा ही रह जाता है। नयी शाखाओं व नये पत्तों पर लाल रंग का सूक्ष्म रोम-सा होता है। पत्ते एकांतर, लंबे डंठलों पर, 7-20 सेमी लंबे तथा भिन्न भिन्न आकृति के होते हैं। उनको नीचे की सतह पर सूक्ष्म, लाल ग्रंथियां होती हैं, और मोटी मोटी शिराएं चमकती हैं। फूल छोटे, तथा नर व मादा पृथक पृथक वृक्षों पर लगते हैं। मादा फूल 5-8 सेमी लंबी, सीधी ऊर्ध्व स्पाइकों में आते हैं। नर फूल पीले रंग के और 8-15 सेमी लंबे, नीचे को लटकती हुई स्पाइकों में लगते हैं। फल 8-13 मिमी व्यास के गोल से किंतु तिपालिक होते हैं। फलों पर सूक्ष्म कत्थई या लाल घनका रोम तथा पाउडर-सा लगा रहता है। फलों को हल्के से मलने से ही वह पाउडर अलग हो जाता है।

प्राप्ति-स्थान

कामेला का वृक्ष हिमालय में 1,500 मी ऊंचाई वाले स्थानों से लेकर दक्षिण में केरल तक, भारत के सभी उष्ण क्षत्रों में, पाया जाता है।

औषधीय गुण

फलों पर लगा हुआ लाल रोम अथवा पाउडर अलग कर लिया जाता है, यही औषधि में काम आता है।

कामेला मुख्यत: टेपवर्म कृमि दूर करने के काम आता है। कामेला-पाउडर का सेवन दूध या दही के साथ किया जाता है। यदि एक खुराक से कीड़ा मर कर नहीं निकल जाता, तो दूसरी खुराक दी जाती है। कभी कभी अरंडी के तेल (कैस्टर-आयल) की सहायता से कीड़े को मल के साथ निकाला जाता है। स्वयं कामेला में भी रेचक गुण हैं। कामेला दाद, खुजली आदि त्वचा रोगों पर भी लगाया जाता है।

कामेला के गर्भनिरोधी गुण जांचने के लिए जानवरों पर कुछ परीक्षण किये गये। कामेला के फलों पर लगे रोम का मुख द्वारा सेवन कराया गया। इससे मादा चूहों और गिनीपिग में प्रजनन क्षमता कम अवश्य देखी गयी।

अन्य उपयोग

प्रख्यात कामेला रंग, जो कपड़े एवं सूत रंगने के काम आता है, इसी वृक्ष से प्राप्त होता है। कामेला के बीज का तेल रंग रोगन व वार्निश बनाने के लिए उत्तम समझा जाता है, क्योंकि यह तेल बहुत शीघ्र सूख जाता है। चित्रकला (पेंटिंग) के लिए भी यह अत्यंत उपयुक्त है, और इसकी बहुत मांग है।

वृक्ष की लकड़ी नाना प्रकार की घरेलू वस्तुएं बनाने के काम आती है, यह दियासलाई बनाने के लिए भी उपयोगी है। पत्ते पशुओं के लिए उपयुक्त चारा हैं। खली खाद के काम आती है। वृक्ष की छाल में टैनीन होते हैं, और यह चमड़ा कमाने के काम आती है। स्त्रियां लाल पाउडर का सिंदूर लगाती हैं। इस वृक्ष को कई भाषाओं में 'सेंदूर' नाम से ही जानते हैं।

51. पोदीना

(मिंट)

मेंथा (Mentha)

(कुल – लेबिएटे)

पोदीना वंश की लगभग सभी उपयोगी जातियों को भारत में पोदीना नाम से ही जानते हैं। इस वंश के पौधे छोटे एवं गंधमय होते हैं। कई जातियां स्वाभाविक रूप से उगती हैं, कुछ की खेती भी की जाती है, इनमें मुख्य उपयोगी तत्व 'मेंथोल' और 'पेपरमिंट-आयल' होते हैं।

पोदीना (मेंथा आरवेंसिस *Mentha arvensis* L., अंग्रेजी– फील्ड-मिंट, कार्नमिंट) : यह एक ऊर्ध्व, शाखित, 60 सेमी तक ऊंचा पौधा होता है। पत्ते 5 सेमी तक लंबे होते हैं। उनके किनारे दंतुर तथा डंठल छोटे होते हैं। कभी कभी पत्ते अवृंत होते हैं। फूल छोटे, गुलाबी और छोटे गुच्छों में पत्तों के कक्ष में आते हैं। यह जाति कश्मीर में 1,500-3,000 मी ऊंचाई तक के स्थानों में होती है, इसकी खेती भी की जाती है।

इसके पत्तों का क्वाथ गठिया के दर्द एवं अपच में लाभप्रद है।

इस जाति की एक जापानी प्रजाति मेंथा आरवेंसिस उपजति हाप्लोकैलिक्स प्रजाति पिपरेसेंस *(Mentha arvensis* L. Subpecies *haplocalyx* Brig variety *piperascens* Holmes) की जम्मू एवं कश्मीर में खेती की गयी है। इससे प्राप्त तेल को 'जापानी-पेपरमिंट-आयल' कहते हैं। यह मेंथा पीपेरिटा (*Mentha piperita* L.) से प्राप्त असली 'पेपरमिंट-आयल' के स्थान पर प्रयोग हो सकता है।

जंगली पोदीना [मेंथा लोंगीफ़ोलिआ *Mentha longifolia* (L.) Huds.] इसका पुराना नाम मेंथा सील्वेस्ट्रिस (*Mentha sylvestris* L. था, अंग्रेजी– हार्स-मिंट; पंजाबी– कोशू) : इसका पौधा अधिक बड़ा होता है, और कश्मीर, पंजाब तथा उत्तर प्रदेश में पाया जाता है। इस पौधे में एंटीसेप्टिक तथा उत्तेजक गुण होते हैं, यह अपच और ज्वर में उपयोगी है।

असली पेपरमिंट

मेंथा वंश का सबसे उपयोगी पौधा विलायती-पोदीना (मेंथा पीपेरिटा *Mentha piperita* L. अंग्रेजी– पेपरमिंट) है। इसकी कश्मीर, उत्तर प्रदेश, मैसूर, मद्रास आदि भारत के कई प्रांतों

में खेती की जाती है।

इस पौधे के पत्तों और फूलवाली ऊपरी शाखाओं को सुखाकर औषधि में प्रयोग करते हैं, इसे पेपरमिंट कहते हैं। यह औषधि अफारा, कै, अतिसार और मतली में लाभप्रद है। सिर तथा अन्य अंगों के दर्द पर इसके पत्ते मसल कर लगाते हैं।

इस औषधि का मुख्य उपयोग तो इससे प्राप्त तेल – पेपरमिंट– आयल (जिसमें 'मेंथोल' होता है) – के कारण है। यह तेल अपच की औषधियों में, सिर दर्द व गठिया आदि के मरहमों में, खांसी की गोलियों में, जुकाम की सूंघनी में, तथा कुल्ला या गरारा करने की औषधियों में प्रयुक्त होता है। यह तेल एंटीसेप्टिक भी है।

52. जटामांसी

वैज्ञानिक नाम : **नार्डोस्टाचिस ग्रांडीफ्लोरा** (*Nardostachys grandiflora* DC.)

(कुल – वेलीरिएनेसिए)

अन्य नाम : **हिंदी** – जटामांसी;
संस्कृत, तमिल, तेलुगु – जटामांसी;
कश्मीरी – भूतजट;
बंगला, गुजराती – जटामांसी;
अंग्रेजी – स्पाइकनार्ड ।

इस पौधे के प्रकंदों पर दाढ़ी जैसे लंबे रेशे होते हैं, इस कारण इसे भारतीय भाषाओं में जटामांसी कहते हैं; वैज्ञानिक नाम में भी यही शब्द अपना लिया गया है ।

वर्णन

यह पौधा बहुवर्षी, लगभग 60 सेमी तक ऊंचा हो जाता है । इसके प्रकंद कड़े व लंबे होते हैं उन पर पुराने पत्तों के डंठलों के रेशे लगे रह जाते हैं, जो दाढ़ी जैसे दिखते हैं । नीचे के पत्ते 20 सेमी तक लंबे होते हैं, यह आधार पर संकरे होते हैं । ऊपर के पत्ते छोटे अंडाकार-से होते हैं । फूल छोटे होते हैं; कई कई फूल छोटे गुच्छों में होते हैं । फल छोटे, रोमिल होते हैं ।

प्राप्ति-स्थान

यह पौधा हिमालय की 3,000 - 4,500 मी ऊंची श्रेणियों में कश्मीर से भूटान तक मिलता है ।

औषधीय गुण

जटामांसी के प्रकंद एवं जड़ें सुखाकर औषधि में प्रयोग करते हैं ।

जटामांसी पौष्टिक, उत्तेजक तथा मरोड़ व ऐंठन दूर करने वाली है । यह कुछ प्रकार के दौरे या आक्षेप (कनवलजन) और हृदय की धड़कन जैसे रोगों में उपयोगी है । यह रेचक, मूत्रल

तथा पाचक है, और रजोधर्म को भी ठीक करती है।

जटामांसी, बिल्लीलोटन (वालेरिआना) नामक औषधि के स्थान पर भी प्रयोग की जा सकती है।

हिमालय की ऊंची श्रेणियों में इसकी खेती की जा सकती है।

53. तुलसी

वैज्ञानिक नाम : **ऑसीमुम सांक्टुम** (*Ocimum sanctum* L.)

(कुल – लैमिएसिए)

अन्य नाम : **संस्कृत** – मंजरी, कृष्ण-तुलसी;
कन्नड़ – विष्णु-तुलसी;
तमिल, तेलुगु, बंगला, गुजराती, मराठी – तुलसी;
मलयालम – त्रित्ताव;
अंग्रेजी – सेक्रेड-बेसिल, होली-बेसिल ।

वर्णन

तुलसी भारत का सुपरिचित पौधा है, अनेक घरों में तो इसे पूज्य समझा जाता है । यह उर्ध्व, अत्यंत शाखित, लगभग 60-75 सेमी ऊंचा, अत्यंत रोमिल पौधा होता है । पत्ते आमने सामने जोड़े में, लगभग 5 सेमी लंबे, किनारों पर सीधे या दंतुर, ऊपर तथा नीचे दोनों ओर रोमिल होते हैं, उन पर कई छोटी ग्रंथियां होती हैं । फूल छोटे, सुगंधित, गुलाबी या हल्के नीले रंग के, छोटी स्पाइकों में लगते हैं । फल छोटे होते हैं, बीज पीले या लाल-से रंग के होते हैं ।

प्राप्ति-स्थान

तुलसी का पौधा प्रायः ही घरों, उद्यानों एवं मंदिरों में लगाया जाता है । कई स्थानों में अब यह जंगली तौर पर भी फैल गया है ।

औषधीय गुण

तुलसी के पत्ते तथा बीज औषधि में काम आते हैं ।

पत्तों से प्राप्त तेल बैक्टीरियानाशक होता है तथा कुछ प्रकार के कीड़ों को भी नष्ट करता है । पत्तों का रस या क्वाथ श्वास नली की सूजन, जुकाम व अपच में उपयोगी होता है । यह दाद, खुजली व अन्य त्वचा रोगों पर भी लगाया जाता है । कान का दर्द दूर करने के लिए पत्तों के रस की बूंदें कान में डालते हैं ।

तुलसी के पत्तों की 'चाय' बनाकर जुकाम में प्रायः ही दी जाती है, यह एक घरेलू नुस्खा है । बीज मूत्र रोगों में लाभप्रद हैं ।

जड़ का क्वाथ पीने से पसीना आ जाता है, इसलिए इसे मलेरिया ज्वर में देते हैं ।

अन्य उपयोग

अनेक भारतीय घरों में इस पौधे की पूजा की जाती है। हिंदू देवी-देवताओं की पूजा सामग्री में प्रायः तुलसी अवश्य ही होती है। मध्य प्रदेश के सुदूर वनों में रहने वाले कुछ आदिवासियों के घरों में भी पूजा के लिए लगाये हुए तुलसी के पौधे देखे गये।

अन्य जातियां

काली-तुलसी (ऑसीमुम कानुम *Ocimum canum* Sims. अंग्रेजी–होअरी-बेसिल, हिंदी-रामतुलसी, भरभरी) : यह पौधा समस्त भारत में, विशेषकर बस्तियों के आसपास के खेतों और बेकार के स्थानों में उगता है। इसके बीज काले होते हैं, बीज पौष्टिक और मूत्रविरेचक होते हैं। इसके पत्तों के तेल में भी वही गुण होते हैं जो तुलसी से प्राप्त तेल में।

बबुई-तुलसी (ऑसीमुम बासीलिकुम *Ocimum basilicum* L. अंग्रेजी–स्वीट-बेसिल; हिंदी–सब्जाह; संस्कृत–मंजरीकी) : यह उत्तर-पश्चिम भारत में होती है, किंतु समस्त भारत में इसके पौधे लगाये जाते हैं। यह पौधा ज्वर, खांसी, कृमि, उदर विकार तथा गठिया में उपयोगी है। पत्तों का रस नासिका तथा त्वचा रोगों में लाभप्रद है। बीजों के सेवन से कब्ज और बवासीर ठीक हो जाते हैं।

तुलसी की एक पूर्वी अफ्रीका की जाति (आसीमुम किलिमंडशारीकुम *Ocimum kilimandscharicum* Guerke, अंग्रेजी–कैंफर-बेसिल) (रंगीन प्लेट III) हाल में ही बहुत प्रसिद्ध हो गयी है। इससे कपूर निकाला जाता है। तुलसी की अन्य जातियों से पृथक करने के लिए इसे कपूर-तुलसी कहना चाहिए। इस जाति की कश्मीर, उत्तर प्रदेश, पश्चिमी बंगाल, महाराष्ट्र, मैसूर, मद्रास व केरल आदि में खेती की जा रही है। लगभग 1,000 मी ऊंचाई तक के स्थान इसकी खेती के लिए उपयुक्त हैं। उत्तर प्रदेश का तराई क्षेत्र इसके लिए उत्तम है।

कपूर औषधि में नाना रूप से प्रयोग होता है, जैसे शरीर की पीड़ा, मोच आदि पर लगाने के लोशन या मरहम में। इनका वर्णन पीछे भी किया जा चुका है (देखें : *सीन्नामोमुम कांफोरा* – कपूर)।

54. निसोथ

(टरपेथ)

वैज्ञानिक नाम : **मेर्रेमिआ टुर्पेथुम** [*Merremia turpethum* (L.) Shah & Bhatt *syn. Operculina turpethum* (L.) Silva Manso]

चित्र 19

(कुल – कनवॉलवुलेसिए)

अन्य नाम : **हिंदी** – पिथोरी, निसोथ;
संस्कृत – त्रिपुटी, कालपर्णी;
कन्नड़ – बिलतिगिड़े;
गुजराती – नशोतर;
तमिल – शिवदई;
तेलुगु – तेलतेगडा;
पंजाबी – निसोथ;
बंगला – दूधिया-कलमी;
मराठी – निशोत्तर;
अंग्रेजी – इंडियन-जलप।

वर्णन

यह एक बड़ा वल्लरी पौधा होता है, इसकी शाखाओं में दूध जैसा सफेद रस होता है। जड़ लंबी, शाखित, सरस होती है। शाखाएं सपक्ष होती हैं। पत्ते 4-10 सेमी लंबे 15.7 सेमी चौड़े, अंडाकार, आधार पर हृदयाकार होते हैं। फूल सफेद, 4-5 सेमी लंबे होते हैं, किंतु पौधे पर फल आने की अवस्था में यह बहुत बड़े हो जाते हैं, और फल को ढक लेते हैं।

प्राप्ति-स्थान

यह लता लगभग 1,000 मी ऊंचाई तक के स्थानों में लगभग समस्त भारत में उगती है। सुंदर फूलों की शोभा के लिए यह प्रायः उद्यानों में भी उगाई जाती है।

पौधे की जड़ सुखाकर औषधि में प्रयोग करते हैं। केवल उन पौधों की जड़ें ली जाती
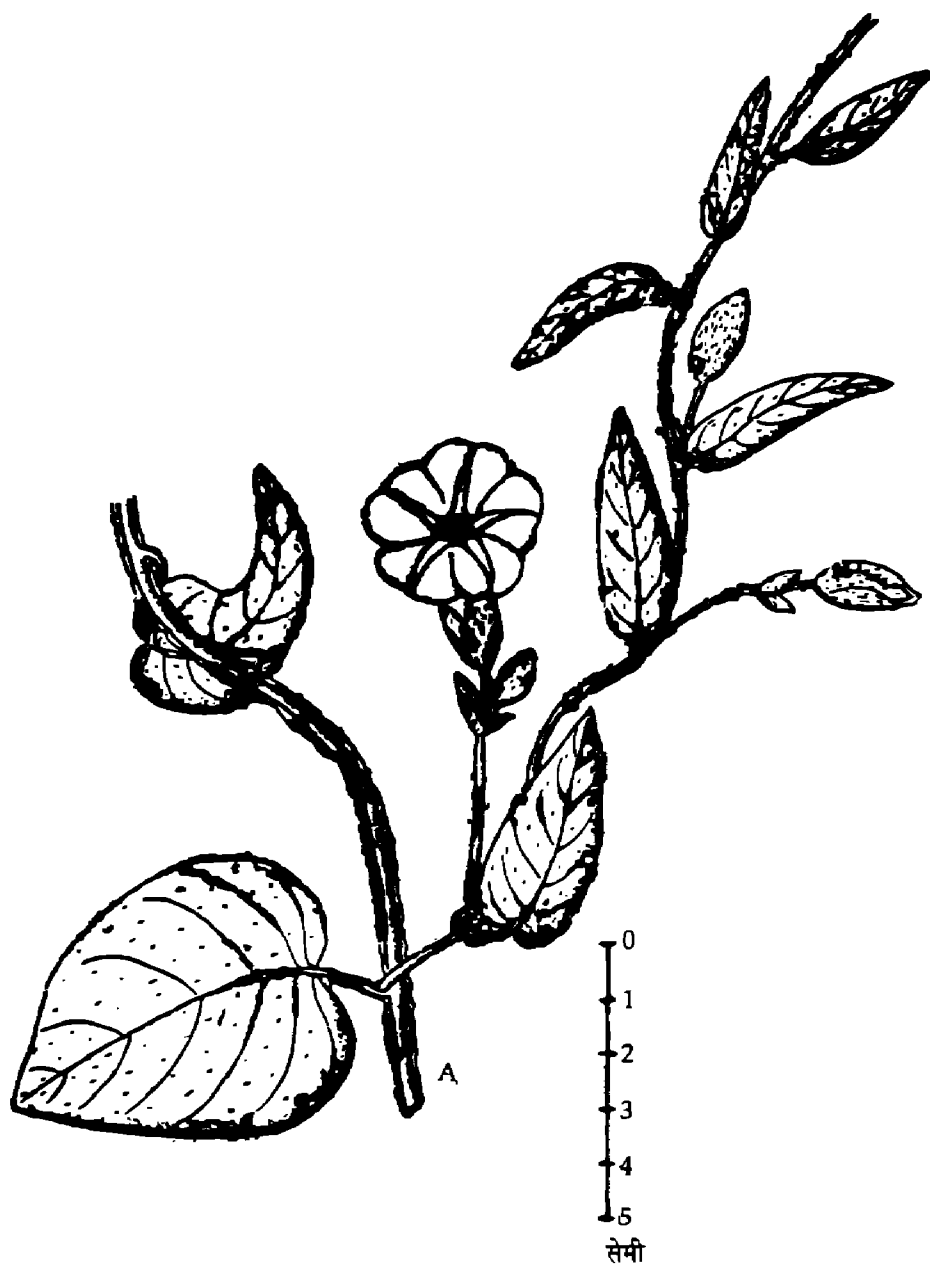
चित्र 19 – **निसोथ** (मेरेमिआ टुर्पेथुम)

हैं,जिन पर सफेद फल आते हैं। खोदने के समय जड़ों की छाल को क्षति नहीं पहुंचनी चाहिए।

निसोथ में 'टरपेथिन' नामक तत्व होता है। 'टरपेथिन' में लगभग वही गुण होते हैं जो असली जलप (Jalap) नामक औषधि में होते हैं। असली जलप अमेरिका के एक पौधे एक्सोगोनिउम पुर्गा *(Exogonium purga* Benth) से निकलती है। जलप के स्थान में निसोथ का प्रयोग किया जा सकता है। निसोथ मिलता है,उसमें मिलावट के लिए प्रायः पौधे की जड़ों के साथ शाखाओं के टुकड़े भी डाल देते हैं।

55. हरमल

वैज्ञानिक नाम : **पेगानुम हारमाला** (*Peganum harmala* L.)

(कुल – रुटासिए)

अन्य नाम : **हिंदी** – गंध्य;
कन्नड़ – सीमेगोरंटे;
गुजराती – हरमर, इसपन;
तमिल – सिमइरवंदी;
तेलुगु – सिमागोरंटी;
बंगला – इस्पंद;
मलयालम, पंजाबी – हरमल;
अंग्रेजी – वाइल्ड-र्‍यू।

वर्णन

हरमल का पौधा झाड़ीनुमा, लगभग 30-90 सेमी ऊंचा होता है। इसके पत्ते 5-8 सेमी लंबे होते हैं, और अनेक छोटी संकरी पालियों में विभाजित होते हैं। फल 2-3 सेमी व्यास के, सफेद, पत्तों के कक्ष में एक एक होते हैं। फल गोल, 5-8 मिली की संपुटिका में होते हैं। बीज 2.5-4 मिमी लंबे, भूरे से रंग के होते हैं, उनके छिलके पर जालिका रूपी धारियां होती हैं।

प्राप्ति स्थान

हरमल भारत के उत्तर-पश्चिमी प्रदेश में तथा भारतीय प्रायद्वीप के शुष्क क्षेत्रों में होता है।

औषधीय गुण

हरमल के बीज सुखाकर औषधि में काम आते हैं।

बीज में कई एल्केलाइड होते हैं, जो दमा, हिस्टीरिया, गठिया, पित्ताशय में पथरी, ऐंठन व मरोड़े के दर्द, ज्वर, पीलिया और रजोधर्म के समय पीड़ा या रुकावट में लाभप्रद होते हैं। बीज नशीले, स्वापक, कृमिनाशक एवं वमनकारी भी होते हैं।

हरमल के बीज से 'हरमलीन', 'यागीन' एवं 'हरमीन' नामक एल्केलाइड निकलते हैं। यह हेलूसिनोजेन होते हैं, इनके सेवन से पिनक-सी आती है तथा मतिभ्रम–'रंगीन दृश्यों' की-सी अवस्था प्राप्त होती है। हरमल औषधि स्नायुमंडल और मस्तिष्क को उत्तेजित करती

है। अधिक सेवन हानिकारक होता है और ज्ञानेंद्रियों को अत्यंत मंद और शिथिल कर देता है।

परीक्षणों द्वारा इसके बैक्टीरियानाशक गुण की पुष्टि हुई है, किंतु मलेरिया ज्वर के रोगियों पर इसका कोई उपयोग दिखाई नहीं दिया।

अन्य उपयोग

हरमल के बीज से एक लाल रंग प्राप्त होता है। पौधे की जड़ों को पीसकर सरसों के तेल में मिलाकर सिर की जूं मारने के काम लेते हैं। यदि पौधे को कुछ शाखाएं कमरे में रखी जायें तो मच्छर नहीं आते।

56. उतरन

(पेर्गुलारिआ)

वैज्ञानिक नाम : **पेर्गुलारिआ डेमिआ** [*Pergularia daemia* (Forsk.) Chivoc.]
(अस्वीकृत नाम : **पेर्गुलारिआ एक्सटेंसा, डेमिआ एक्सटेंसा**)

(कुल – एस्कलीपिएडेसिए)

अन्य नाम : **हिंदी** – उतर्णी, सदोवनी;
संस्कृत – युगफला;
कन्नड़ – हालुकोरिटिगेगिडा;
गुजराती – चमारदूधी, नागलादूधी, वेडलांवल;
तमिल – उत्तमणि;
तेलुगु – दुष्टपतिगे;
पंजाबी – करियाल;
बंगला – छागलवेटे;
मराठी – उतरनी;
(मध्य प्रदेश – कड़वाडोड, घोलककड़ी)।

वर्णन

यह एक वल्लरी पौधा होता है, इसके तने रोमिल होते हैं, और उनमें दूध-सा सफेद रस होता है। पत्ते 4-6 सेमी लंबे (या अधिक) अंडाकार या मंडलाकार, नीचे रोमिल, आधार पर हृदयाकार होते हैं। फूल सफेद या हल्के पीले रंग के होते हैं, और छोटे गुच्छों में लगते हैं। फली 5-8 सेमी लंबी, 1.3 सेमी मोटी भालाकार, लंबाग्र फॉलीकिल होती है। दो फली एक साथ लगती हैं, और नत होती हैं, अर्थात नीचे को मुड़ी रहती हैं। फलों पर छोटे छोटे कांटे से होते हैं।

प्राप्ति स्थान

यह पौधा 1,000 मी ऊंचाई तक के स्थानों में लगभग सारे भारत में होता है।

औषधीय गुण

समूचा पौधा औषधि में काम आता है।

पत्तों का रस सर्दी, जुकाम और अतिसार में दिया जाता है। यह गठिया में, तथा मासिक धर्म रुकने पर दी जाने वाली एक रेचक औषधि में भी डाला जाता है। पत्तों का रस गर्भाशय के लिए बलकारक, कफनिस्सारक तथा वमनकारी है। गर्भाशय पर इसका लाभप्रद गुण परीक्षणों द्वारा सिद्ध हुआ है। यह स्त्री रोगों में गुणकारी है। उतरन में ऐसे उपयोगी तत्व होते हैं, जिनमें 'पिटुईट्रेन' जैसी क्षमता होती है।

57. कुटकी

(पीक्रोर्हीजा)

वैज्ञानिक नाम : **पीक्रोर्हीजा कुर्रोआ** (*Picrorhiza kurroa* Royle ex Benth.)

(कुल – स्क्रोफुलेरिएसिए)

अन्य नाम : **हिंदी** – कुरु;
संस्कृत – कटुकी;
कश्मीरी – करू;
गुजराती – कडू;
तमिल – रोगिणी;
तेलुगु – कटुकू-रोणि;
पंजाबी – काली-कुटकी;
बंगला – कटकी;
मलयालम – कटुक-रोहणी।

वर्णन

कुटकी का पौधा छोटा होता है, उसके पत्ते 5-10 सेमी लंबे स्पैचुला के आकार के होते हैं; ये शीर्ष पर अधिक चौड़े होते हैं। कुटकी के प्रकंद 15-25 सेमी लंबे, कड़े होते हैं। फूल छोटे, व पतली स्पाइकों में लगते हैं। फूल दो प्रकार के होते हैं, कुछ में छोटे पतली स्पाइकों में लगते हैं। फूल दो प्रकार के होते हैं, कुछ में छोटे, केवल 8 मिमी लंबे पुंतंतु होते हैं, दूसरों में 2 सेमी लंबे पुंतंतु होते हैं। फल 1.3 सेमी लंबे होते हैं।

प्राप्ति-स्थान

यह पौधा कश्मीर से सिक्किम तक केवल हिमालय की 3,000-4,000 मी ऊंची पर्वत श्रेणियों में पाया जाता है।

औषधीय गुण

पौधे के प्रकंद सुखाकर औषधि में प्रयोग करते हैं।

यह औषधि कटु, पौष्टिक और पर्यायरोधी होती है। इसके सेवन से पित्त अधिक बनता है। इसमें नीलकंठ (जेंशियन) की तरह क्षुधावर्धक गुण होते हैं। यह पाचक रसों में स्रवण बढ़ाती है। यह जलोदर में भी लाभप्रद है। कुटकी के एंटीबायोटिक गुणों की परीक्षण द्वारा पुष्टि हुई है। हिमालय पर्वत की ऊंची श्रेणियों, जैसे 3,000-4,000 मी ऊंचाई वाले स्थान, इस पौधे की खेती के लिए उपयुक्त समझे जाते हैं। क्योंकि कुटकी असली जेंशियन (जेंशिआना लूटेआ *Gentiana lutea* L.) के स्थान पर प्रयोग की जा सकती है, यह एक महत्वपूर्ण औषधि है।

58. चीड़

वैज्ञानिक नाम : **पीनुस रॉक्सबुर्घिई** (*Pinus roxburghii* Sargent)
(अस्वीकृत नाम : **पीनुस लोंगीफ़ोलिआ**)

(कुल – पाइनेसिए)

अन्य नाम : **असमिया** – तेल्लिया;
तमिल – सिमईदेवदारी;
पंजाबी – चील;
बंगला – सरलगाछ।

इस वृक्ष का वैज्ञानिक नाम रॉक्सबुर्घिई एक प्रसिद्ध वनस्पतिज्ञ डॉ. विलियम रॉक्सबर्घ के सम्मान में दिया गया है। डॉ. रॉक्सबर्घ ने 18वीं शताब्दी के अंत से 19वीं शताब्दी के आरंभ तक भारत में सहस्रों पौधे एकत्रित किये, उनका वर्णन लिखा और अनेक पुस्तकों की रचना की। उन्हें 'भारतीय वनस्पतिशास्त्र का जन्मदाता' कहा गया है।

वर्णन

चीड़ का वृक्ष काफी बड़ा हो जाता है, उसके पत्ते सूच्याकार होते हैं, और 3 पत्ते एक साथ लगते हैं। नरकोष छोटी होती है; मादाकोष 10-50 सेमी लंबी होती है।

प्राप्ति-स्थान

चीड़ का वृक्ष हिमालय की निचली पहाड़ियों पर तथा अन्य पर्वतीय क्षेत्रों में होता है। उद्यानों आदि में इसे प्रायः ही लगाने की चेष्टा की जाती है।

औषधीय गुण

चीड़ तथा इसके वंश के कुछ अन्य वृक्षों से एक राल जैसा (रेजिनी) पदार्थ तारपीन निकलता है। इससे तारपीन का तेल (आयल-आफ-टर्पेंटाइन) निकालते हैं, यह औषधि में काम आता है।

यह तेल लगाने से त्वचा में उत्तेजना पैदा हो जाती है। अत्यंत सीमित मात्रा में सेवन करने से यह उत्तेजक कफनिस्सारक है, और पुरानी खांसी या श्वासनली की सूजन में लाभदायक है। इससे पेट का अफारा व ऐंठन ठीक होते हैं। कुछ मात्रा में यह मियादी-ज्वर, मसूड़ों व नाक से खून आना आदि में लाभप्रद है। इसका एनीमा देने से कब्ज दूर हो जाता है।

यह विशेषतया तो गठिया आदि पीड़ा में लगाने के लोशन, लेप व पलास्तर आदि बनाने के काम आता है। तारपीन का तेल सूंघने से ही खांसी-जुकाम में लाभ होता है।

अन्य उपयोग

चीड़ की लकड़ी नाना प्रकार से उपयोगी है। विशेषकर यह चाय की पेटियां, दियासलाई, खेल के सामान, संगीत के सामान, बाजे आदि बनाने के काम आती है।

बेरोजा चूड़ियां बनाने के काम आता है।

छाल में टैनीन तथा कुछ रंग होते हैं।

59. पीपलामूल

(पीपर, लोंग-पैपर)

वैज्ञानिक नाम : **पीपेर लोंगुम** (*Piper longum* L.)

(कुल – पाइपरेसिए)

अन्य नाम : **हिंदी** – पीपल, पीपली;
संस्कृत – मागधी, पिप्पली;
असमिया – पीपलू;
कन्नड़ – हिप्पली;
गुजराती – पीपली;
तमिल, तेलुगु – पिपिली;
बंगला – पीपुल, जत्या;
जलपाइगुड़ी – शावप्पा।

इसका संस्कृत नाम मागधी यह संकेत करता है कि पौधा मगध देश अर्थात उत्तर बिहार में मिलता है।

वर्णन

यह एक छोटा सुगंधित पौधा होता है जो प्रायः भूमि पर फैलता है या लता बनकर पेड़ व झाड़ी आदि पर चढ़ जाता है। नीचे के पत्ते 6-10 सेमी लंबे, अंडाकार, आधार पर हृदयाकार होते हैं। ऊपर के पत्ते अंडाकार अथवा दीर्घवत होते हैं, यह भी आधार पर हृदयाकार होते हैं। पत्ते ऊपर गाढ़े हरे, चमकदार, नीचे केलई रंग के होते हैं। अनुपर्ण 1.3 सेमी लंबे होते हैं, किंतु शीघ्र ही झड़ जाते हैं। फूल स्पाइकों में आते हैं। स्पाइक गूदेदार, 2.5-4 सेमी लंबी , अंडाकार या दीर्घवत, काले हरे रंग की, चमकीली-सी होती है। फल छोटे, अंडाकार होते हैं और गूदेदार स्पाइकों में धंसे रहते हैं।

प्राप्ति-स्थान

यह पौधा भारत के उष्ण क्षेत्रों में होता है; इसकी खेती भी की जाती है।

(अलोए *Aloe)* के साथ मिलाकर देते हैं।

पापरी त्वचा रोगों में तथा रसौली या गिल्टी पर भी उपयोगी है।

इस वंश की एक अमेरिकन जाति पोडोफील्लुम पेल्टाटुम *(Podophyllum peltatum* L.) का भारत में कुछ स्थानों पर रोपण किया गया है। 1,500-3,000 मी ऊंचाई वाले स्थान, जैसे कश्मीर, हिमाचल प्रदेश, पंजाब, उत्तर प्रदेश तथा सिक्किम में हिमालय की पहाड़ियों में इसकी खेती की जा सकती है।

62. बावची

(सोरालेआ)

वैज्ञानिक नाम : सोरालेआ कोरीलीफोलिया *(Psoralea corylifolia* L.)

(कुल – फाबेसिए) रंगीन प्लेट V

अन्य नाम : **संस्कृत** – सुगंधकंटक;
उर्दू – बकुची;
कन्नड़ -- बावंची-गिड़ा;
हिंदी, गुजराती, मराठी, पंजाबी – बाबची;
तमिल – कर्पोकषी;
तेलुगु – काला-गिजा;
बंगला – लटकस्तूरी, हाकूच ।

वर्णन

इस पौधे की शाखाओं पर घनका ग्रंथिल रोम होता है । पत्ते मंडलाकार होते हैं, उनके नीचे तथा ऊपर दोनों सतह पर सूक्ष्म काली ग्रंथियों के दाने से होते हैं । फूल छोटे, नीले या बैंजनी रंग के और पत्तों के कक्ष में लगे गुच्छों में आते हैं । प्रत्येक गुच्छे में 10-30 फूल होते हैं । फल काले, गोल व दीर्घवत होते हैं । उन पर छोटे गड्ढों के से घनके निशान होते हैं । बीज एक तथा चिकना होता है ।

प्राप्ति-स्थान

बाबची के पौधे समस्त भारत में बेकार स्थानों में उग आते हैं; इसकी खेती भी की जाती है ।

औषधीय गुण

बाबची के बीज औषधि में काम आते हैं ।

बीज में एक वाष्पशील तेल होता है, जो त्वचा रोग पैदा करने वाले कुछ बैक्टीरिया या जीवाणु पर अत्यंत प्रभावशाली होता है, इसलिए यह औषधि श्वेत-कुष्ठ तथा कुष्ठ पर लगाने

के लिए मरहम, तथा पीने की औषधि बनाने के भी काम आती है। बीज में मूत्रविरेचक एवं कृमिनाशक गुण भी हैं। परीक्षणों द्वारा बाबची के जीवाणुनाशक एवं कृमिनाशक गुणों की पुष्टि की गयी है। बीज का ओलिओरेजिनी अर्क कुछ प्रकार के श्वेत-कुष्ठ पर उपयोगी है। इस कारण इसे 'कुष्ठ नाशिनी' नाम भी दिया गया है।

बाबची की जड़ दांतों की जड़ें गल जाने पर, तथा इसके पत्ते अतिसार में उपयोगी बताये गये हैं।

63. बीजासाल

(इंडियन-कीनो)

वैज्ञानिक नाम : **टेरोकार्पुस मार्सूपिउम** *(Pterocarpus marsupium* Roxb.)

(कुल– फारेसिए)

अन्य नाम : **हिंदी** – असन, पिआसाल;
संस्कृत – महाकुटज;
कन्नड़ – वल्लेहोन्ने;
गुजराती – बिबला;
मराठी – होन;
मलयालम – कीनो;

इस वृक्ष की छाल से एक गोंद निकलता है, जिसे कीनो कहते हैं, इसलिए इस वृक्ष को 'कीनो-ट्री' नाम दिया गया है।

वर्णन

बीजासाल का वृक्ष बड़ा और शोभनीय होता है। इसके पत्ते संयुक्त होते हैं, उनमें 5-7 पत्रक होते हैं। पत्रक 8-13 सेमी लंबे, दीर्घायत अथवा दीर्घवृतीय होते हैं। फूल लगभग 1.5 सेमी लंबे, पीले, खुशबूदार, बहुत बड़े गुच्छों में आते हैं। फली 2-5 सेमी लंबी, मंडलाकार-सी सपक्ष होती है; उसमें एक बीज होता है।

प्राप्ति-स्थान

बीजासाल भारत के मध्य तथा प्रायद्वीपी भाग में होता है और प्राय: मिश्रित पतझड़ी वनों में पाया जाता है। यह गुजरात व महाराष्ट्र आदि में 1,100 मी. ऊंचाई के स्थानों तक पहुंच जाता है। वृक्ष पर जब फूल आते हैं, अत्यंत शोभनीय होता है, तथा वनों में, दूर से दिखायी देता है।

औषधीय गुण

इस वृक्ष के पत्ते, फूल व गोंद औषधि में काम आते हैं।

वृक्ष की छाल में चीरा लगाने से गोंद निकलता है, इसे कीनो कहते हैं। यह स्तंभक होता

है, और अतिसार में लाभप्रद है। इसका प्रभाव कत्थे के मुकाबले कम है। यह दांत के दर्द में भी उपयोगी है। कीनो गोंद ज्वर और मूत्र में शक्कर आदि जाने में उपयोगी समझा जाता है।इसके पत्ते मसलकर फोड़ों एवं अन्य त्वचा रोगों पर लगाये जाते हैं।

बहुत लोगों की धारणा है कि यह वृक्ष मधुमेह में उपयोगी है। इसकी लकड़ी का टुकड़ा रात भर पानी में भिगो देते हैं। प्रातकाल यह जल रोगी को पिला देते हैं। अभी तक जो परीक्षण किये गये हैं उसमें इस धारणा की पुष्टि नहीं हुई है। अस्पतालों में जिन रोगियों पर इनके परीक्षण किये गये उनमें से केवल 7 प्रतिशत को कुछ लाभ प्रतीत हुआ।

अन्य उपयोग

बीजासाल की लकड़ी बढ़िया फर्नीचर, इमारती काम, आदि में उपयोगी है।

अन्य जातियां

इस वंश की एक अन्य जाति लालचंदन (टेरोकार्पुस सांटालीनुस *Pterocarpus santalinus* L.f अंग्रेजी–रेड-सैंडर्सवुड; संस्कृत– रक्तचंदन) भी औषधि में उपयोगी समझी जाती है। सिर के दर्द व सूजन आदि में ठंडक पहुंचाने के लिए इस वृक्ष की अंतः काष्ठ (हार्डवुड) घिसकर लगाना उपयोगी समझा जाता है। यह वृक्ष दक्षिण भारत में होता है।

64. सर्पगंधा

(राउवॉल्फिआ)

वैज्ञानिक नाम : **राउवॉल्फिआ सर्पेंटीना** *(Rauvolfia serpentina* L. Benth ex Kurz)

रंगीन प्लेट VIII

(कुल– अपोसाइनेसिए)

अन्य नाम : **हिंदी** – छोटा चांद;
संस्कृत – चंद्रिका;
उर्दू – धान-बरुवा;
कन्नड़ – सर्पगंधी;
तमिल, मलयालम – चुवन्नाअवलपोरी;
तेलुगु – पातालगंधि;
बंगला – चंद्रा;
मराठी – हरकया;
(**सहारनपुर** – मूंगा)।

इस पौधे का वैज्ञानिक नाम सोलहवीं शताब्दी में एक जर्मन वनस्पतिज्ञ एवं चिकित्सक लेओनार्ड राउवॉल्फ के नाम पर आधारित है।

वर्णन

सर्पगंधा का पौधा झाड़ीनुमा ,30-75 सेमी ऊंचा, अरोमिल, उर्ध्व होता है। एक गांठ पर पत्ते कई और चक्राकार होते हैं, पत्ते 8-20 सेमी लंबे, आधार पर संकरे होते हैं। डंठल छोटा-सा होता है। फूल लगभग 1.5 सेमी लंबे, पखुड़ियां सफेद या गुलाबी, पुष्पवृंत गहरे लाल तथा छोटे गुच्छों में होते हैं। फूलों के बाह्य दल पुंज गाढ़े लाल रंग के अत्यंत सुंदर होते हैं। फल छोटे, गोल, गाढ़े बैंजनी या पकने पर काले से होते हैं।

प्राप्ति-स्थान

सर्पगंधा 1,000 मी ऊंचाई तक के स्थानों में लगभग समस्त भारत में होता है। यह हिमालय

के तलहटी प्रदेश में और पश्चिमी एवं पूर्वी घाट की निचली पहाड़ियों में अधिक होता है। यह बंगाल, बिहार, उत्तर प्रदेश, महाराष्ट्र आदि कई प्रांतों में मैदानी भूमि में भी उग आता है। आम के बागों के आसपास भी यह उगता पाया गया है। भारत के कई स्थानों पर इसकी खेती भी की जा रही है।

औषधीय गुण

सर्पगंधा की जड़ें औषधि में प्रयुक्त होती हैं। जड़ें उखाड़ते समय उनकी छाल को क्षति नहीं पहुंचानी चाहिए। यह जड़ें 3 या 4 वर्ष पुराने पौधों से और शरद ऋतु में निकाली जायें तो अच्छा है।

ऐसा कहा जाता है कि भारत में आयुर्वेदिक चिकित्सा में इस पौधे का ज्ञान लगभग 4,000 वर्ष पूर्व से है। ईसा की दूसरी शताब्दी में लिखी चरक की रचना में तो इसका वर्णन है।

सर्पगंधा की जड़ों में कई एल्केलाइड मिलते हैं। इस औषधि में मुख्यतया शमक निद्रायक, अवसादक एवं रक्तचाप घटाने के गुण हैं। आजकल सर्पगंधा बढ़े हुए रक्तचाप तथा पागलपन की चिकित्सा में बहुत प्रयोग होता है। इसका अवसादक प्रभाव अत्यंत धीमा होता है, इस कारण यह रोग की उग्र अथवा तीव्र (एक्यूट) अवस्था में लाभप्रद नहीं होता। यह औषधि पुराने मानसिक रोगियों को अथवा चिंताग्रस्त व्यक्तियों को शांति पहुंचाने के लिए उपयुक्त है। इसके सेवन से मस्तिष्क को चैन-सा मिल जाता है। खांसी, दमा तथा अंतड़ियों में जख्म के रोगियों को सर्पगंधा का सेवन नहीं करना चाहिए।

सर्पगंधा की जड़ें ज्वर एवं पेट के कुछ विकारों में भी लाभप्रद हैं।

इस वंश की एक अन्य जाति राउवॉल्फिआ टेट्राफील्ला (*Rauvolfia tetraphylla* L., जिसका पुराना नाम राउवॉल्फिआ कानेसेंस *Rauvolfia canescens* L. था) भी औषधि में उपयोगी है। इसमें सर्पगंधा जैसे ही गुण होते हैं।

सर्पगंधा वंश के पौधों पर बहुत शोध कार्य किया गया है और अब भी चल रहा है। भारत इस दिशा में सबसे आगे रहा है। किंतु अब कुछ देशों में सर्पगंधा से प्राप्त एल्केलाइड रासायनिक ढंग से भी बना लिये गये हैं।

यह पौधा भारत में मैदानी या तलहटी प्रदेश में (अत्यंत शुष्क क्षेत्रों को छोड़कर) कहीं भी उगाया जा सकता है।

पौधों को लगाने की सर्वोत्तम विधि इसकी जड़ों की कटिंग बोना है। यह बीज से या टहनियों की कटिंग से भी उग सकता है। एक एकड़ भूमि से लगभग 6-7 क्विंटल तक जड़ें इकट्ठा की गयी हैं।

65. रेवंदचीनी

(रहूबर्ब)

वैज्ञानिक नाम : **रहेउम एमोडी** (*Rheum emodi* Wall. ex Meissn)

(कुल-पोलीगोनेसिए)

अन्य नाम : **संस्कृत** – रेवटचीनी;
गुजराती – गमनी-रेवंदचीनी;
बंगला – कोकिमा, रेवांदचीनी;
तमिल, तेलुगु – नत्तूईरेवलचीनी।

वर्णन

इस पौधे की जड़ व तने बहुत मोटे और मजबूत होते हैं। नीचे वाले पत्ते बड़े, लगभग 60 सेमी व्यास के मंडलाकार होते हैं, उनके डंठल 30-45 सेमी. लंबे व काफी मोटे होते हैं। फूल बहुत छोटे, गाढ़े फालसई रंग के होते हैं, और बहुत बड़े गुच्छे में लगते हैं। फल 1-3 सेमी. लंबे, फालसई रंग के होते हैं।

प्राप्ति-स्थान

यह पौधा हिमालय पर्वत के 3,000-4,000 मी. ऊंचाई वाले स्थानों में, कश्मीर, हिमाचल प्रदेश, पंजाब, उत्तर प्रदेश तथा नेपाल में उगता है।

औषधीय गुण

रेवंदचीनी के प्रकंद सुखाकर औषधि में प्रयोग करते हैं। एक दूसरी जाति अर्चू (रहेउम वेब्बिआनुम, *Rheum webbianum* Royle) के प्रकंद भी साथ में काम आ जाते हैं।

6-7 वर्ष पुराने पौधों से, उनके फूलने से एकदम पहले, प्रकंद इकट्ठे किये जाने चाहिए। उनकी छाल को क्षति नहीं पहुंचनी चाहिए।

रेवंदचीनी रेचक होती है, इसमें टैनीन भी होते हैं, इस कारण दस्त आने के बाद इसके स्तंभक प्रभाव से फिर कब्ज हो जाता है। कब्ज के पुराने रोगियों के लिए यह औषधि उपयुक्त नहीं है। हल्का-सा कब्ज होने पर यह लाभदायक है। स्तंभक होने के कारण रेवदचीनी कुछ

प्रकार के अतिसार में भी दी जाती है, जैसे आंतों में किसी उत्तेजक पदार्थ से हो जाने वाले अतिसार में।

हिमालय की ऊंची श्रेणियां इसकी खेती के लिए उपयुक्त हैं।

अन्य जातियां

ब्रिटेन के मान्य औषध कोश में र्हेउम पामाटुम *(Rheum palmatum* L.) से प्राप्त प्रकंद मान्य समझे गये हैं, किंतु भारतीय जातियों से प्राप्त प्रकंद भी औषधि के लिए उपयुक्त हैं।

66. अरंडी

(कैस्टर आयल सीड)

वैज्ञानिक नाम : **रीसीनुस कोम्मूनिस** *(Ricinus communis* L.)

(कुल – एउफोर्बिएसिए)

अन्य नाम : **संस्कृत** – एरंड;
असमिया – भैरांडा;
उड़िया – जड़ा;
कन्नड़ – हरलू;
गुजराती – दिवेली, एरडियू;
तमिल – आमनक्कम;
तेलुगु – एरंडमु;
बंगला – रेड़ी, गांव-भेरेंडा;
मराठी – अरंडी;
मलयालम – आवणक्क ।
[**किस्तना (आंध्र)** – आमदम, पेड्डा-आमदम ।]

अरंडी की भिन्न किस्मों को कभी कभी पृथक नाम भी दिये जाते हैं । जैसे सफेद बीज वाली किस्म को भाटरेंडी, पीले बीज वाली किस्म को जोगिया-रेंडी ।

पुरानी पुस्तकों में इस पौधे को चित्रबीज, पंचांगुल एवं वातारि नाम दिये हैं । चित्रबीज इसलिए कहा गया है, क्योंकि बीज का रंग सुंदर चित्तीदार-सा होता है । पंचांगुल का आशय हस्ताकार, 5 शिरा वाले पत्तों से है । वातारि, अर्थात वात का अरि; वायुरोग या गठिया का शत्रु ।

वर्णन

यह एक झाड़ीनुमा अथवा कभी कभी वृक्ष सरीखा पौधा होता है । इसके पत्ते बड़े, चौड़े, 7 अथवा 9 पालियों में कटे, किनारों पर दतुंर होते हैं । फूल बड़े होते हैं; और शीर्ष पर लगे लंबे, गुच्छों में आते हैं । फल एक संपुटिका होती है, इस पर कांटे होते हैं । बीज दीर्घायत होते हैं, उनका छिलका पपड़ी जैसा होता है । अरंडी की एक किस्म बहुवर्षी एवं वृक्ष जैसी होती है,

उसके बीज लाल और बड़े होते हैं; इसका तेल केवल जलाने या मशीनों के पुर्जों में लगाने के लिए उपयुक्त होता है। दूसरी किस्म एकवर्षी होती है, उसके बीज भूरे चित्तीदार होते हैं; इनका तेल औषधि के लिए उपयुक्त होता है। एक अन्य किस्म के पत्ते बैंजनी, लाल से रंग के होते हैं; यह केवल उद्यानों आदि में शोभा के लिए लगाई जाती है।

प्राप्ति-स्थान

अरंडी का पौधा खेतों की मेंड़ों पर व उद्यानों आदि में बहुत लगाया जाता है। यह जंगली भी हो जाता है। प्रायः बस्तियों के आसपास अथवा बेकार स्थानों में उग आता है।

औषधीय गुण

पौधे के बीज का तेल औषधि में काम आता है। स्वयं तो बीज विषैले होते हैं और 2-3 बीज भी घातक हो सकते हैं।

बीज का तेल, जिसे अरंडी का तेल (या कैस्टर-आयल; अपभ्रंश कास्ट्रैल) कहते हैं, तीव्र रेचक होता है। यह दूध या फलों के रस के साथ लिया जाता है। अरंडी का तेल आंख में डालने की औषधियों में तथा त्वचा पर ठंडक पहुंचाने के लिए कुछ मरहमों में मिलाया जाता है।

प्रसव की सुविधा के लिए इस तेल का उपयोग बहुत उपयुक्त नहीं है, बल्कि जहां तक संभव हो, इस तेल का तो रेचक के रूप में भी प्रयोग रजोधर्म के समय तथा गर्भवती स्त्रियों को नहीं करना चाहिए।

अरंडी का तेल गर्भनिरोधी (कंट्रासेप्टिव) जैली व क्रीम आदि बनाने के काम आता है।

(बस्तर के आदिवासी अरंडी के पत्तों को शरीर के दुखते हुए 'जोड़ों' पर मलते हैं। वे नये पत्तों को पीसकर रेचक के रूप में प्रयोग करते हैं।)

अरंडी के तेल से निर्मित श्लेष त्वचाशोथ के लिए उपयोगी होता है तथा यह एग्जिमा या अन्य त्वचा रोगों का अच्छा रोधक भी है।

67. चंदन

(सैंडलवुड)

वैज्ञानिक नाम : **सांटालुम आल्बुम** (*Santalum album* L.)

(कुल – सेंटेलेसिए)

अन्य नाम : **हिंदी** – संदल;
संस्कृत – मलयज, भोगिवल्लभ;
कन्नड़ – श्रीगंध, अगाड़ुगंध;
बंगला, गुजराती – सुखड़;
मराठी, संस्कृत, तमिल, तेलुगु – चंदन, संदल।

वर्णन

यह छोटा या मझोला सदाहरित वृक्ष होता है। इसकी शाखाएं नीचे की ओर झुकी-सी रहती हैं। छाल काली व खुरदरी और सुगंधित होती है। पत्ते 4-6 सेमी लंबे, आमने सामने लगे होते हैं तथा प्राय: चमकीले होते हैं। फूल छोटे, गुलाबी या बैंजनी रंग के होते हैं, और छोटे गुच्छों में आते हैं। फल गोल 6 मिमी व्यास के सरस, गाढ़े बैंजनी या काले रंग के होते हैं।

प्राप्ति-स्थान

चंदन के वृक्ष भारत में प्रायद्वीप में विशेषकर दक्षिण में अधिक होते हैं।

औषधीय गुण

चंदन के अंदर की लकड़ी (अंतःकाष्ठ) से प्राप्त तेल औषधि में प्रयुक्त होता है।

इस तेल में मूत्रविरेचक गुण है, यह मूत्रकृच्छ के इलाज में दिया जाता है। इसे मूत्राशय की सूजन, सूजाक और खांसी में भी उपयोगी बताया गया है। मूत्राशय के क्षय रोग में चंदन का तेल लाभदायक बताते हैं।

अन्य उपयोग

चंदन की लकड़ी नाना प्रकार की छोटी छोटी घरेलू वस्तुएं, खिलौने, आदि बनाने के काम आती

है। लकड़ी में बहुत समय तक गंध बसी रहती है। चंदन की लकड़ी का चूरा अगरबत्ती और होम-हवन के चूरे बनाने के काम आता है। चंदन का तेल अनेक सुगंधित साबुन व शृंगार सामग्री बनाने के काम आता है। इससे कुछ कीटनाशक औषधियां भी बनती हैं।

68. अशोक

वैज्ञानिक नाम : **सराका असोका** [*Saraca asoca* (Roxb.) Dewilde]
अस्वीकृत नाम : **साराका ईंडिका** (*Saraca indica auct.* non L.)

(कुल – सीसलपीनिएसिए)

अन्य नाम : **हिंदी, बंगाली** – अशोक;
गुजराती – अशोपालव;
तमिल – असोगम;
उड़िया, मलयालम, मराठी, कन्नड़ – अशोक।

इस वृक्ष का नाम अशोक वाटिका, जहां रावण ने महारानी सीता को बंदी रखा था, से संबंधित है।

वर्णन

यह एक छोटा सदाहरित वृक्ष होता है, उसके पत्ते संयुक्त होते हैं, उनमें कई 7-25 सेमी लंबे चीमड़ पत्रक होते हैं। पत्ते शाखाओं पर बहुत अधिक संख्या में और घने घने लगते हैं, जिससे वृक्ष पर हरी चादर का आवरण-सा दीखता है। फूलों में चमकीले नारंगी रंग के सहपत्र होते हैं; फूल घनके गुच्छों में आते हैं। फली 15-25 सेमी लंबी व चपटी होती है उसमें कई बीज होते हैं।

प्राप्ति-स्थान

अशोक के वृक्ष हिमालय के मध्य व पूर्वी भागों में तथा पूर्व एवं दक्षिण भारत में पाये जाते हैं। यह बहुधा ही उद्यानों व नगरों में सुदंर फूलों की शोभा के लिए लगाये जाते हैं।

औषधीय गुण

अशोक की छाल को सुखाकर औषधि में प्रयोग करते हैं।

यह मासिक धर्म के समय अत्यधिक रजस्राव को रोकती है, इसमें स्तंभक गुण हैं। यह गर्भाशय को शांति पहुंचाती है। गर्भाशय के रक्तस्राव में अरगट (Ergot) के बजाय इसका

भी प्रयोग कर सकते हैं।

हाल में वृक्ष की छाल पर नाना प्रकार के परीक्षण करके यह ज्ञात करने का प्रयत्न किया गया कि उनका गर्भाशय के रोगों में वास्तव में उपयोगी प्रभाव है अथवा नहीं। फल संतोषजनक नहीं मिला। यह संभव है कि अशोक की छाल से रोगियों को लाभ इसलिए होता है कि उसमें कुछ ऐसे तत्व हैं जिनका ज्ञान वैज्ञानिकों को अभी नहीं है। अथवा यह भी संभव है कि जिन तत्वों में पृथक पृथक परीक्षण करने पर लाभ दिखाई नहीं दिया, वही तत्व छाल में एक साथ विद्यमान होने पर लाभप्रद होते हों।

अशोक के फूलों को पानी में पीसकर खूनी अतिसार में देते हैं। अशोक के बीज मूत्र के साथ शक्कर आदि जाने के रोग में उपयोगी बताते हैं।

69. कूथ

(साउस्सुरेआ)

वैज्ञानिक नाम : **साउस्सुरेआ लाप्पा** *(Saussurea lappa* Clarke)

(कुल – आस्टेरेसिए)

अन्य नाम : **संस्कृत** – अगद, कुष्ट;
कन्नड़ – कोष्ट;
गुजराती – कूथ;
तमिल, तेलुगु – कोष्टम्;
बंगला – कुर;
मलयालम – कोट्टम ।

वर्णन

यह एक बहुवर्षी पौधा है और 2 मी तक ऊंचा हो जाता है। इसके पत्ते बहुत बड़े होते हैं; नीचे वाले पत्ते तो 1-2 मी तक हो जाते हैं। पत्तों के डंठल सपक्ष होते हैं। ऊपर के पत्ते छोटे होते हैं; उनमें कभी तो डंठल होते हैं, कभी नहीं। पत्तों के आधार पर दो पालि होती हैं, जो पौधे के तने को लिपटी-सी होती हैं। फूल लगभग 2 सेमी लंबे, नीले-बैंजनी या काले रंग के होते हैं, और गोल पुष्पपुंजों में लगते हैं। कई पुष्पपुंज इकट्ठे पत्तों के कक्ष में, अथवा टहनियों के शीर्ष पर, लगे रहते हैं। कूथ के बीजों पर लंबे लंबे बाल होते हैं, और गोल पुष्पपुंजों में लगते हैं। कई पुष्पपुंज इकट्ठे पत्तों के कक्ष में, अथवा टहनियों के शीर्ष पर लगे रहते हैं। कूथ के बीजों पर लंबे लंबे बाल होने के कारण बीज बनने में पुष्पपुंज रुई के गोले सरीखे दिखते हैं।

प्राप्ति-स्थान

यह पौधा हिमालय की ऊंची पहाड़ियों पर कश्मीर तथा उसके पास के क्षेत्रों में 2,500 से 4,000 मी ऊंचाई पर पाया जाता है। जम्मू कश्मीर तथा हिमाचल प्रदेश में इसकी कृषि भी की जाती है।

औषधीय गुण

कूथ की जड़ों को सुखाकर औषधि के काम में लाते हैं।

इस औषधि में एंटीसेप्टिक अथवा निसंक्रामक तथा रोगाणुनाशक गुण हैं। यह दमा, श्वास नली की सूजन, अफारा, उदरशूल, तथा हृदय के कुछ रोगों में उपयोगी है। यह मूत्रविरेचक है। कूथ शरीर की अनैच्छिक पेशियों को शांति पहुंचाता है, शमक है, और इस कारण खांसी, दमा आदि में उपयोगी है। किंतु इसका प्रभाव बहुत स्थायी नहीं होता। यह औषधि त्वचा रोगों और गठिया में भी लाभप्रद बताई गयी है।

परीक्षणों द्वारा यह दिखाया गया है कि यदि पहले जड़ों में से पेट्रोल-ईथर में घुलने वाले तत्व दूर कर दिये जायें, और तब उनका सार या अर्क बनाया जाये, तो वह श्वासनली के रोगों में अधिक लाभदायक है।

अन्य जातियां

कूथ के वंश की कुछ अन्य जातियां भी हिमालय पर्वत पर मिलती हैं, किंतु उनका औषधि में प्रयोग अत्यंत सीमित है।

हिमालय पर्वत की ऊंची श्रेणियों में हिमाचल प्रदेश से लेकर सिक्किम तक का क्षेत्र कूथ के रोपण के लिए उपयुक्त समझा जाता है।

70. बला

वैज्ञानिक नाम : **सीडा कॉर्डीफोलिआ** (*Sida cordifolia* L.)

(कुल – मालवेसिए)

अन्य नाम : **हिंदी** – खरेंटी, कुंगी;
संस्कृत – जयंती;
उड़िया – बड़ियानानला;
कन्नड़ – हेत्तूति;
गुजराती – बलादाना; बलबुवारो, बलनां-सावेणां;
तमिल – अरिवलमणइप्पुंडु;
तेलुगु – चीरुबेड़ा;
बंगला – बेरेला, बला;
मराठी – चिकना;
मलयालम – कट्टुरम ।

वैज्ञानिक नाम में कॉर्डीफोलिया शब्द का अर्थ है हृदयाकार, यह पत्तों के आकार पर आधारित है ।

वर्णन

यह अत्यंत शाखित, फैला हुआ किंतु झाड़ीनुमा पौधा होता है । पौधे के सभी अंगों पर ताराकार रोम होते हैं । पत्ते प्राय: 2-5 सेमी लंबे, गोल या अंडाकार, आधार पर हृदयाकार, किनारों पर दंतुर होते हैं । फूल पीले, छोटे और एक या कई साथ लगे रहते हैं । फल 6-8 मिमी व्यास के 7-10 अंडपों में विभाजित होते हैं; प्रत्येक अंडप के शीर्ष पर दो शूल होते हैं ।

प्राप्ति-स्थान

यह पौधा लगभग समस्त भारत में पाया जाता है और खेतों, उद्यानों, बस्तियों के आसपास तथा छोटे वृक्षों या झाड़ियों के नीचे प्राय: ही उग आता है ।

औषधीय गुण

बला का समूचा पौधा औषधि में काम आता है ।

इसमें पौष्टिक बलकारक तथा यौन-शक्तिवर्धक गुण बताये जाते हैं । पौधे के बीजों में

यह गुण प्रधानतया बताया है। बला की जड़ी और अदरक का अर्क ज्वर में उपयोगी है। जड़ की छाल को दूध व शक्कर के साथ (अथवा अलग ही) पीसकर सेवन करना श्वेतप्रदर एवं स्त्रियों के अन्य रोगों, स्नायुमंडल के रोग, आदि में उपयोगी है। जड़ों के रस के प्रयोग से जख्म शीघ्र भर जाते हैं। जड़ की छाल तिल के तेल और दूध में मिलाकर सेवन करने से कुछ प्रकार के चेहरे के पक्षाघात ठीक हो जाते हैं।

पौधे के बीज सूजाक तथा उदरशूल (मरोड़ा) में उपयोगी बताते हैं।

अन्य जातियां

बला के वंश की निम्न जातियों में भी औषधीय गुण होते हैं :

बनमेथी (सीडा आकूटा *Sida acuta* Burm f. संस्कृत– बला) : इसकी जड़ें मूत्र संबंधी एवं ज्ञान तंतु संबंधी रोगों, ज्वर में और उदर के विकारों में उपयोगी हैं। पत्तों में भी औषधीय गुण बताते हैं।

श्वेत-बरेला (सीडा र्‌होंबीफोलिया *Sida rhombifolia* L. संस्कृत--अति-बला) : यह पौधा गठिया के दर्द तथा श्वासनली के क्षय रोग में उपयोगी है। इसमें शमक गुण भी होते हैं।

गुलसकरी (सीडा स्पीनोसा *Sida spinosa* L. संस्कृत– नागबला) : इस पौधे की जड़ें और जड़ की छाल मूत्राशय की जलन एवं सूजाक में शांति पहुंचाती हैं। यह ज्वरनाशक एवं पौष्टिक भी है। पत्तों में भी यही औषधीय गुण होते हैं।

71. कटेरी

(कंटकारी)

वैज्ञानिक नाम : **सोलानुम एवीकुलावे** *(Solanum aviculave* Burm F.)
(अस्वीकृत नाम : **सोलानुम जांथोकार्पुम)**

रंगीन प्लेट VII

(कुल – सोलेनेसिए)

अन्य नाम : **हिंदी** – रींगणी;
संस्कृत – कंटकारी;
असमिया – कटसरेया;
उड़िया – बृहति बैंगनी;
कन्नड़ – रामगुल्ला;
गुजराती – भोयरींगणी पटरींगणी;
तमिल – कंदनगट्टारी;
तेलुगु – छल्लनमुलगा, नेलमुलका;
पंजाबी – कंडियारी, मोकरियान;
बंगला – कंटकारी।

वर्णन

यह एक कंटीला, अत्यंत शाखित पौधा होता है। यह प्रायः भूमि पर फैलता है, कभी कभी सीधा ऊपर को भी बढ़ता है। नयी शाखाओं पर घनके, सूक्ष्म, ताराकार रोएं होते हैं। समूचे पौधे पर कांटे होते हैं। कांटे पीले, चमकदार, लगभग 1.5 सेमी लंबे होते हैं। पत्ते 10 सेमी तक लंबे होते हैं। उनकी शिराओं पर भी कांटे होते हैं। कई फल एक साथ गुच्छों में लगते हैं, ये गुच्छे प्रायः पत्तों के डंठल की दूसरी ओर निकलते हैं। फूल बैंजनी या फालसाई-से रंग के लगभग 2 सेमी लंबे होते हैं। फल सरस, 1.5-2 सेमी व्यास के गोल, पीले या केलई रंग के होते हैं; उन पर हरी धारियां होती हैं।

प्राप्ति-स्थान

यह पौधा लगभग सारे भारत में मिलता है और प्रायः सड़कों के किनारे, खुले, सूखे मैदानों में

और नगरों में कूड़े-कचरे के आसपास उगता है।

औषधीय गुण

पौधे की जड़ों को सुखाकर औषधि में प्रयोग करते हैं।

यह औषधि खांसी, दमा, छाती का दर्द और कुछ प्रकार के ज्वरों में उपयोगी है। यह मूत्रल है तथा मूत्राशय आदि में पथरी हो जाने पर उपयोगी है। इस औषधि के रोगाणुनाशक गुण परीक्षणों द्वारा सिद्ध हुए हैं। कटेरी के फल अनेक रोगों में उपयोगी समझे जाते हैं, जैसे गले में खारिश, श्वासनली में सूजन, पेशियों में दर्द, ज्वर आदि। किंतु भारत अथवा अमेरिका के मानक औषधि कोश में इसका उल्लेख नहीं है।

यह जानने के लिए कि इस पौधे में संततिनिरोधक (कंट्रासेप्टिव) गुण हैं अथवा नहीं, पौधे की टहनियों तथा पत्तों से प्राप्त औषधियों से जानवरों पर कुछ परीक्षण किए गये, किंतु कोई सफलता नहीं मिली। कटेरी सर्प के काटने पर उपयोगी समझी जाती थी, किंतु परीक्षणों द्वारा यह गुण सिद्ध नहीं हो सका।

(बस्तर के आदिवासी कान के दर्द में, फलों को कुचलकर उनका रस कान में डालते हैं।)

अन्य उपयोग

कटेरी की छोटी पत्तियां तथा फल कच्चे तथा उबाल कर खाने के काम आते हैं।

अन्य जातियां

मकोय–(सोलानुम नीग्रुम – *Solanum nigrum* L. बंगाली– गुड़कामाई, काक माची; कन्नड़– काचीगिड़ा; पंजाबी– पिलक) : यह अनेक औषधियों में प्रयुक्त होती है और भारत की सुपरिचित वनौषधि है। समूचे पौधे का क्वाथ पेचिश, अन्य उदर रोग व ज्वर में लाभदायक है, यह मूत्रविरेचक भी है। पौधे का रस फोड़ों तथा अन्य त्वचा रोगों में उपयोगी है। मकोय के फल बहुत उपयोगी होते हैं। उनमें पौष्टिक, रेचक, तथा क्षुधावर्धक गुण होते हैं। ये दमा, त्वचा रोग, मूत्र संबंधी रोग व अत्यधिक प्यास में लाभप्रद हैं। कच्चे हरे फलों को पीसकर दाद पर लगाते हैं।

इस वंश के दो अत्यंत सुपरिचित पौधों आलू और बैंगन में औषधीय गुण होते हैं।

आलू– (सोलानुम टूबेरोसुम – *Soalnum tuberosum* L.) : जिस जल में आलू उबाले गये हों, वह चेहरे की फुंसियों, जले के जख्मों, तथा त्वचा के फोड़े फुंसियों पर उपयोगी होता है। आलू का स्टार्च त्वचा पर लगाने के लिए मरहमों में, तथा औषधि की गोलियां बनाने के काम आता है।

बैंगन– (सोलानुमा मेलोंगेना – *Solanum melongena* L.) : बैंगन के कच्चे फल हृदय के लिए बलकारक व क्षुधावर्धक होते हैं। पके फल रेचक होते हैं किंतु उनके सेवन से पित्त का प्रकोप होने की आशंका रहती है। बैंगन के पत्तों को पीसकर आतशक के फोड़ों पर लगाते हैं; जड़ों के सार का सेवन भी उपयोगी बताया है।
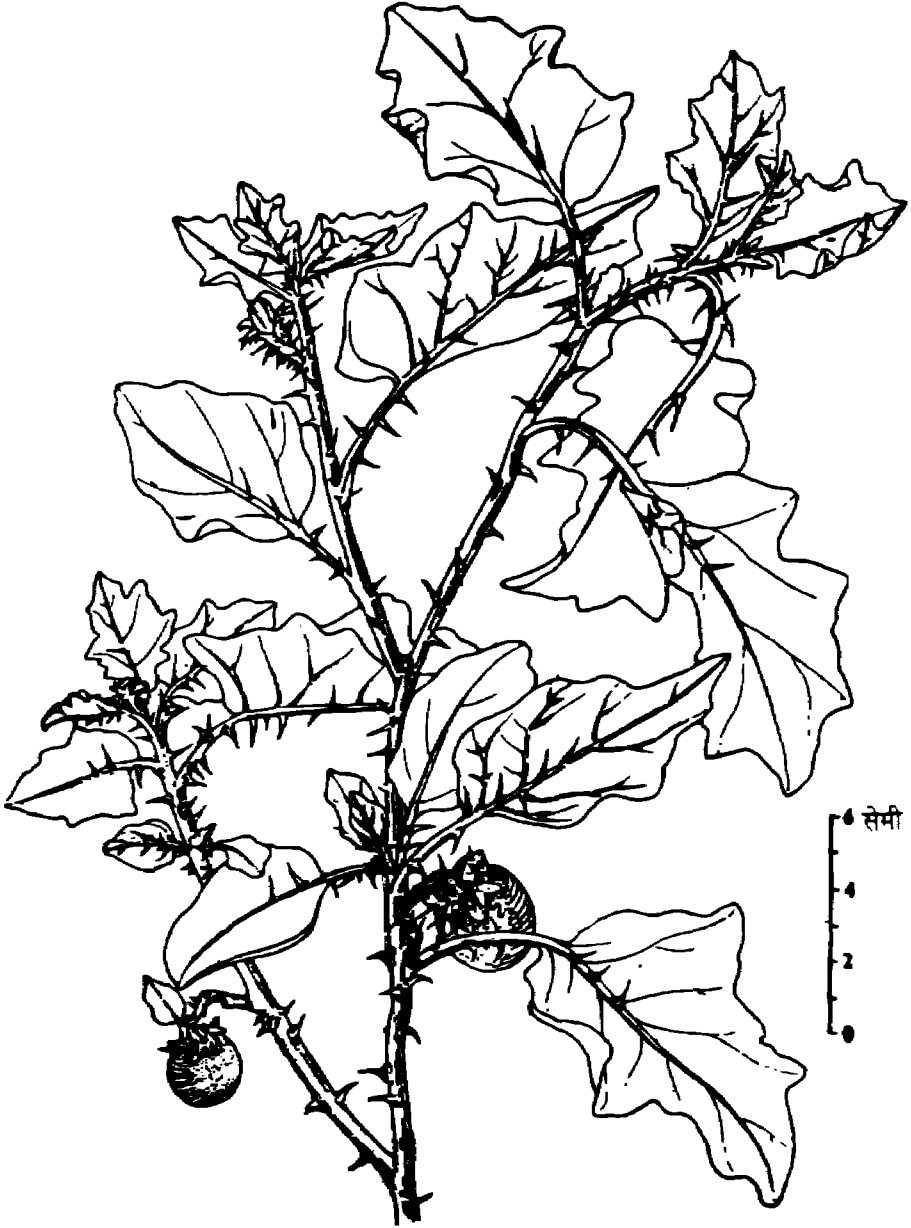
चित्र 20—अलीद (सोलानुम ईकानुम)

हाल में असम तथा भारत के अन्य भागों में पाई जाने वाली एक जाति सोलानुम विआरुम (*Solanum vianum* Dunal) ने अत्यंत प्रसिद्धि पाई है ।

इस पौधे में 'सोलेसोडीन' एल्केलाइड बड़ी मात्रा में होता है । इस एल्केलाइड से 'सेक्स होरमोन' बनते हैं । कलकत्ता, मुंबई तथा जोरहम (असम) आदि की कुछ वैज्ञानिक संस्थाओं में इस पौधे पर शोधकार्य चल रहा है ।

'सोलेसोडीन' प्राप्त करने हो के लिए एक विदेशी पौधे सोलानुम अवीकुलारे (*Solanum aviculare* Forst.) का कश्मीर में रोपण करने का प्रयत्न किया जा रहा है ।

सोलानुम वंश की अन्य जातियां जिनमें औषधीय गुण बताये जाते हैं, निम्नलिखित हैं :-

असीद – डसोलानुम ईकानुम (चित्र 20) – *Solanum incanum* L.] : इसे हिंदी में गागलीभाटा भी कहते हैं ।

काकमाची– सोलानुम डुल्कामारा (*Solanum dulcamara* L.)

बृहतिका– सोलानुमा ईंडिकुम (*Solanum indicum* L.) बंगाली – तीत-मेकुरी ।

रामबेगुन– सोलानुम फेराक्स (*Solanum ferox* L.) संस्कृत – चंद्रपुष्पा ।

72. कड़ाया

वैज्ञानिक नाम : **स्टेर्कूलिआ उरेंस** *(Sterculia urens* Roxb.)

(कुल–स्टेर्कुलिएसिए)

अन्य नाम : **हिंदी** – कुलू, गलू, कड़ई;
उड़िया – ग्रिंडोला;
कन्नड़ – केंपूदाड़े, भूताली;
गुजराती – कड़ीयो, कंडोल;
तमिल – वेल्लाइपुत्तालि;
तेलुगु – पोणाकु;
मराठी, पंजाबी – कुलू;
मलयालम – तुंडी।
(संथाल प्रदेश – तेलहैच)।

वर्णन

यह एक मझोला पतझड़ी वृक्ष होता है। इसकी सफेद या केलई रंग की चमकदार पतली कागजी-सी छाल दूर से दिखाई देती है। इसके पत्ते बड़े, हस्ताकार 20-40 सेमी व्यास के, 5 पालियों में विभाजित होते हैं। पत्तों की निचली सतह पर घनके रोएं होते हैं। पत्ते शाखाओं के शीर्ष पर अधिक होते हैं। फूल छोटे, पीले या भूरे रंग के होते हैं। यह बड़े, रोमिल गुच्छों में लगते हैं। फल में 4 या 5 बड़े, लाल रंग के, कड़े अंडप होते हैं। इन पर भी घनका रोम होता है; इन बालों को छूने से खुजली आती है।

प्राप्ति-स्थान

यह वृक्ष हिमालय की निचली पहाड़ियों पर तथा पूर्व, मध्य एवं दक्षिण भारत में होता है। यह प्रायः शुष्क या अर्धशुष्क वनों में पाया जाता है।

औषधीय गुण

वृक्ष के तने से जो गोंद निकलता है, उसे कड़ाया या करीरा गोंद कहते हैं। इसी का औषधि में

प्रयोग होता है।

गोंद में रेचक गुण है। त्वचा पर लगाने के लिए कड़ाया गोंद ट्रैगेकैंथ (Tragacanth) के गोंद से भी अधिक उपयुक्त है, यह त्वचा पर अधिक सुहाता है। कंठ रोगों में, नकली दांत बनाने के मसाले में, तथा नाना प्रकार की मीठी गोलियां, चटनी आदि बनाने में ट्रैगेकैंथ गोंद के स्थान पर कड़ाया गोंद का प्रयोग किया जाता है।

(बस्तर के आदिवासी वृक्ष की छाल को कूटकर प्रसव के समय स्त्रियों को देते हैं। उनका विश्वास है कि इससे प्रसव सुविधा से हो जाता है।)

अन्य उपयोग

कड़ाया की लकड़ी इमारती काम में, पैकिंग के डिब्बे बनाने में तथा नाना प्रकार की घरेलू वस्तुएं बनाने के काम आती है। वृक्ष की छाल से बहुत मजबूत रेशा निकलता है; यह रस्सी तथा मोटा कपड़ा आदि बनाने के काम आता है। कड़ाया गोंद दाल-भाजी में डालकर खाया भी जाता है। इसके बीज भी खाये जाते हैं।

अन्य जातियां

कड़ाया के वंश की दो जातियां, ऊदल (स्टेर्कूलिआ वील्लोसा *Sterculia villosa* Roxb. उड़िया– कोदालो) जो लगभग समस्त भारत में पाई जाती है, तथा जंगली बादाम (स्टेर्कूलिआ फेटिडा – *Sterculia foetida* L.) जो दक्षिण भारत में होती है, औषधि में उपयोगी है। ऊदल के गोंद में कड़ाया जैसे ही गुण हैं। जंगली बादाम के बीज का तेल रेचक होता है।

73. चिरायता

वैज्ञानिक नाम : **स्वेर्टिआ किराइटा** [*Swertia chirayita* (Roxb.) Karst]

(कुल– जेंशिएनेसिए)

अन्य नाम : **संस्कृत** – किराततिक्त;
कन्नड़ – नेलाबेव;
तमिल, तेलुगु – नीलवेंबू;
बंगला – चिरेता;
मराठी – चिरागिता।

वर्णन

यह पौधा एकवर्षीय पौधा होता है। यह कभी कभी 1.5 मी तक ऊंचा हो जाता है। इसके पत्ते टहनियों की गांठों पर आमने सामने होते हैं, उनमें डंठल नहीं होते। पत्ते लंबोतरे, लगभग 10 सेमी लंबे, निशिताग्र होते हैं। फूल केलई या हल्के फालसई रंग के होते हैं। प्रत्येक दल पर दो हरी ग्रंथियां-सी होती हैं। फल अंडाकार लगभग 6 मिमी लंबे होते हैं।

प्राप्ति-स्थान

चिरायता कश्मीर से असम तक, हिमालय पर्वत में 1,200 से 3,000 मी ऊंचाई वाले स्थानों में होता है।

औषधीय गुण

पुष्पन के समय समूचे पौधे को उखाड़कर सुखा लिया जाता है, यह समूचा पौधा औषधि में काम आता है।

चिरायता भारत की सुपरिचित वनौषधि है। यह मुख्यतया ज्वरनाशक, पाचक एवं कृमिनाशक गुणों के लिए प्रसिद्ध है। इसमें वही गुण हैं जो नीलकंठ (जेंशिआना कुरू) में। ज्वर, अतिसार और दुर्बलता की चिकित्सा में इसका प्रयोग होता है। यह मलेरिया में दिया जाता है। पर हाल के परीक्षणों में ज्वर पर इसका प्रभाव सिद्ध नहीं हुआ।

अन्य जातियां

चिरायता के वंश की 7-8 और जातियां भारत के पर्वतीय क्षेत्रों में मिलती हैं। वे सभी चिरायता की तरह उपयोगी हैं।

असम तक के ऊंचे पर्वतीय क्षेत्र इसके रोपण के लिए उपयुक्त बताये जाते हैं।

74. लोध

वैज्ञानिक नाम : **सींप्लोकॉस रासेमोसा** *(Symplocos racemosa* Roxb.)

(कुल– सींपलोकेसिए)

अन्य नाम : **संस्कृत, मराठी** – लोध्र;
असमिया – लर्पोगडांग, डिएंगलमकी;
कन्नड़ – बलोड्डिड;
गुजराती – लोद्र;
तेलुगु – लोड्डुगू;
बंगला – लोध;
सिंगभूमि – लुड़मदारु ।

वर्णन

यह वृक्ष लगभग 6 मी ऊंचा होता है; इसके पत्ते 8-20 सेमी लंबे, गाढ़े हरे रंग के, चर्मिल, प्रायः निशिताग्र होते हैं । उनके किनारे सीधे या दंतुर, डंठल छोटे लगभग 8-20 मिमी लंबे होते हैं । फूल छोटे, लगभग 1.2 सेमी व्यास के सफेद या हल्के पीले रंग के तथा पत्तों के कक्ष में लगे छोटे गुच्छों में होते हैं । फल 1-1.3 सेमी लंबे, बैंजनी या काले रंग के होते हैं ।

प्राप्ति-स्थान

लोध के वृक्ष मध्य तथा पूर्वी भारत के मैदानी और तलहटी प्रदेशों में पाये जाते हैं ।

औषधीय गुण

वृक्ष की छाल निकालकर तुरंत सुखा ली जाती है । यह औषधि के काम में आती है ।

लोध अपच, नेत्र रोग तथा फोड़े व जख्मों पर उपयोगी है । यदि मसूड़ों से खून जाता हो तो छाल के क्वाथ से गरारे या कुल्ला करते हैं । फोड़ों को शीघ्र पकाने के लिए छाल की लुगदी से बनाये हुए मरहम या पलस्तर लगाते हैं । लोध में स्तंभक गुण होते हैं, इस कारण मासिक धर्म में रक्त के अधिक प्रवाह को कम करने के लिए तथा पतले दस्त को रोकने के लिए इसका प्रयोग करते हैं । यह फीलपांव तथा पेशाब में चर्बी आने में भी दी जाती है ।

अन्य जातियां

लोध के वंश की एक अन्य जाति सींपलोकॉस पानीकुलाटा *(symplocos paniculata*

Wall.) पंजाब से असम तक पर्वतीय भागों में पाई जाती है। इस वृक्ष को भी उन्हीं स्थानीय नामों से पुकारते हैं जिनसे लोध को। इसकी छाल में भी लोध जैसे गुण बताते हैं; यह पौष्टिक भी बताई जाती है।

75. जामुन

(जंबोलन)

वैज्ञानिक नाम : **सीज़ीजिउम कूमिनी** [*Syzygium cumini* (L.) Skeels]
(अस्वीकृत नाम : **एड्जेनिआ जांबोलाना**)

चित्र 21

(कुल– मिर्टेसिए)

अन्य नाम : **संस्कृत** – जंबूल;
असमिया – जामू, जांबू;
उड़िया – जामकूक;
कन्नड़ – जंबूनेरेले;
गुजराती – जांबू;
तमिल – नगई, सांबल;
बंगला – जाम;
मराठी – जांभूल;
मलयालम – यावेल
(ललितपुर, उत्तर प्रदेश – काठ जामुन) ।

वर्णन

जामुन का वृक्ष सदाहरित और प्राय: बहुत बड़ा होता है । इसके पत्ते 8-20 सेमी लंबे, चर्मिल, चिकने तथा चमकदार होते हैं; वह आमने सामने जोड़े में लगते हैं । जामुन के फूल छोटे, मटमैले सफेद रंग के, बड़े बड़े गुच्छों में आते हैं । फलों से हम सभी परिचित हैं । वह 1.5-4 सेमी लंबे, अंडाकार, पहले बैंजनी रंग के, तदुपरांत पकने पर गहरे जामुनी या काले रंग के, सरस, गुठलीदार होते हैं । प्राय: उनमें एक गुठली होती है । जामुन खाने के बाद जीभ पर जामुनी गूदे का रंग बहुत समय तक रहता है ।

प्राप्ति-स्थान

यह वृक्ष प्राय: नम पतझड़ी या सदाहरित वनों के आसपास रहता है; यह पानी के निकट अर्थात
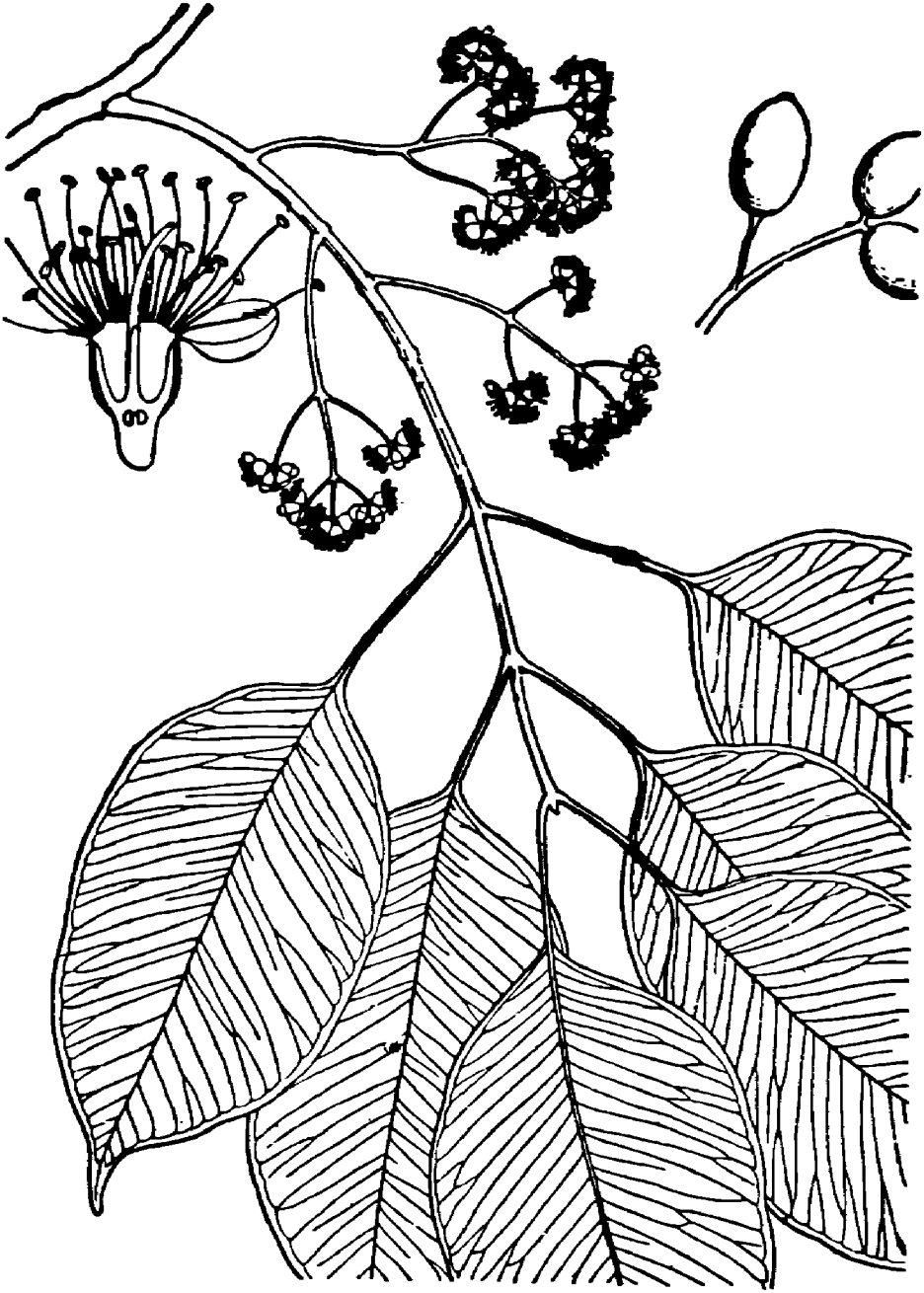
चित्र 21 – **जामुन** (सीजीजिउम कूमिनी)

नदी नालों के किनारे अधिक होता है। अधिक शुष्क क्षेत्रों में यह नहीं होता, किंतु इसके रोपे हुए वृक्ष राजस्थान के अत्यंत शुष्क क्षेत्रों में भी जल के निकट अथवा उद्यानों में दिखाई देते हैं।

औषधीय गुण

जामुन की छाल, फल तथा बीज (गुठली) औषधि में काम आते हैं।

वृक्ष की छाल स्तंभक होती है और कंठ के रोग, श्वास नली की सूजन, खांसी, दमा, पेचिश तथा फोड़े-फुंसी पर उपयोगी है। यह रक्त साफ करने के लिए तथा गरारे करने के लिए भी उपयोगी है। छाल का ताजा रस बकरी के दूध के साथ सेवन करने से अतिसार में लाभप्रद है।

बीज मधुमेह में उपयोगी होते हैं। यद्यपि फलों के रस में भी वही गुण हैं किंतु बीज अधिक लाभप्रद होते हैं। यह औषधि इंजेक्शन द्वारा लेने पर ही लाभप्रद है, खाने से नहीं। मूत्र की शक्कर को रोकने का गुण (एंटीडाएबेटिक) इसमें बीजासाल से कहीं अधिक है।

अन्य उपयोग

जामुन का फल बड़ी मात्रा में कच्चा ही खाया जाता है। इसकी लकड़ी नाना प्रकार से प्रयोग होती है।

अन्य जातियां

जामुन के वंश का एक अन्य वृक्ष लौंग [सीज़ीजिउम आरोमाटीकुम *Syzygium aromaticum* (L.) Merr. & Perry जिसका पुराना नाम एइजेनिआ कारिओफील्लाटा था] बहुत उपयोगी होता है। इस वृक्ष की कलियों को सुखा लेते हैं। यही लौंग कहलाती और औषधि में प्रयोग होती है। लौंग अत्यंत सुगंधित, उद्दीपक और वायुसारी होती है तथा पेट का अफारा, अपच, वमन व मतली आने के रोगों में लाभप्रद है। लौंग का तेल एंटीसेप्टिक होता है। अर्थात उसकी उपस्थिति में रोगाणु शीघ्र नहीं बढ़ते या फैलते। यह तेल पेट के मरोड़ व अफारा में भी उपयोगी है।

76. इमली

(टैमरिंड)

वैज्ञानिक नाम : **टामारींडुस ईंडिका** (*Tamarindus indica* L.)

चित्र 22

(कुल– सीसलपीनिएसिए)

अन्य नाम : **संस्कृत** – आम्लिका;
उड़िया – तेंतुली;
कन्नड़ – हुनसेमरा, चिंच;
तमिल – पुलि;
तेलुगु – आम्लिका;
बंगला, गुजराती – आंवली;
मराठी – चिंच, आंबली;
मलयालम – वालमपुली, आम्लम।

वर्णन

इमली का वृक्ष सदाहरित तथा काफी बड़ा होता है। इसके पत्ते संयुक्त होते हैं, उनमें लगभग 10-20 जोड़े छोटे छोटे पत्रक होते हैं। नये पत्ते हल्के हरे रंग के होते हैं। फूल हल्के पीले रंग के होते हैं और उन पर लाल धारियां होती हैं। फूल बड़ी संख्या में आते हैं और बहार के समय वृक्ष के नीचे फूलों की चादर-सी बिछ जाती है। फली 8-20 सेमी लंबी, 2-3 सेमी चौड़ी, सीधी या हंसिया-सी मुड़ी हुई, गूदेदार, भूरे रंग की होती है और वृक्ष पर लटकती रहती है। प्रत्येक फली में कई बीज होते हैं। बीज प्रायः कत्थई रंग के व चमकीले होते हैं, और रेशेदार गूदे में लगे रहते हैं। इमली का गूदा खट्टा होता है।

प्राप्ति-स्थान

यह वृक्ष प्रायः मध्य और दक्षिण भारत में होता है। सड़कों के किनारे तथा नगरों व उद्यानों में सारे भारत में ही लगाया जाता है।

चित्र 22 – **इमली** (टामारीडुस ईंडिका)

औषधीय गुण

इमली का गूदा औषधि में प्रयोग होता है।

इमली में हल्का रेचक गुण होता है। इससे एक स्वादिष्ट पेय बनाते हैं,जो ज्वर में लाभप्रद होता है। रेचन के लिए या तो इमली को अन्य रेचक पदार्थों के साथ मिलाकर लेते हैं, अथवा अलग ही सेवन करते हैं। इमली के मिश्रण से तीव्र रेचक पदार्थों का गुण कुछ मंद हो जाता है।

अन्य उपयोग

इमली की लकड़ी पर कीड़ा शीघ्र नहीं लगता,इस कारण यह कृषि में काम आने वाले औजार, घरेलू वस्तुएं,फर्नीचर आदि बनाने के काम में आती है। इसका कोयला गन पाउडर बनाने के काम में आता है। पत्तों से एक पीला रंग निकलता है। फल का खट्टा गूदा पीतल या चांदी के बर्तन साफ करने के लिए बहुत उपयुक्त होता है। इमली के बीज जैम व जैली के उद्योग में काम आते हैं। पिसे हुए बीज लकड़ी जोड़ने के मसाले तथा कपड़ा मिलों में प्रयोग होने वाले स्टार्च बनाने के काम आते हैं।

77. बहेड़ा

(बेल्लेरिक-माइरोबलान)

वैज्ञानिक नाम : **टेर्मिनालिआ बेल्लीरिका** [*Terminalia bellirica* (Gaertn.) Roxb.]

(कुल– कॉम्ब्रीटेसिए)

अन्य नाम : **संस्कृत** – तेलफल;
असमिया – भोविआन, हुल्लुच
कन्नड़ – तारेमरा;
तमिल – अक्कम, लानरी;
तेलुगु – टाडी, टांड्रा, तान्निका;
बंगला, गुजराती, मराठी, पंजाबी – बहेड़ा
(**चटगांव** – बोआरागोटा;
संथल – लोपोन)।

वर्णन

यह एक बड़ा वृक्ष होता है, इसके तने में प्रायः मोटे पुश्ते होते हैं। पत्ते 10-25 सेमी लंबे होते हैं और प्रायः शाखाओं के शीर्ष पर लगे रहते हैं। फूल छोटे, केलई रंग के दुर्गंधित होते हैं, और पतली स्पाइकों में लगते हैं। फल 2-3 सेमी लंबे, अंडाकार, भूरे या कत्थई रंग के अत्यंत रोमिल होते हैं।

प्राप्ति-स्थान

बहेड़ा के वृक्ष पश्चिमी भारत के शुष्क क्षेत्रों को छोड़कर लगभग समस्त भारत में 1,000 मी ऊंचाई तक के प्रदेश में मिलते हैं। यह प्रायः मिश्रित पतझड़ी वनों में अधिक होते हैं।

औषधीय गुण

बहेड़ा के सूखे फल औषधि में काम आते हैं।

फल अपच, अतिसार आदि उदर रोगों में उपयोगी हैं। ये मस्तिष्क के लिए भी लाभप्रद

चित्र 23 – **अर्जुन** (टेर्मिनालिआ अर्जुन)

हैं। फलों का पानी नेत्रों पर लगाने से जलन दूर होती है। बहेड़ा बवासीर,कुष्ठ रोग,जलोदर और ज्वर में उपयोगी है। अधपके फल रेचक होते हैं किंतु पके,सूखे फलों में बिल्कुल विपरीत गुण होते हैं।

बहेड़ा के फल त्रिफला नामक प्रसिद्ध औषधि का एक अंग हैं। त्रिफला में अन्य दो पदार्थ होते हैं,हर्रा और आवंला। हर्रा का वर्णन नीचे किया है। आंवला के विषय में पिछले एक अध्याय में लिखा जा चुका है।

अन्य उपयोग

बहेड़ा की लकड़ी जल के अंदर शीघ्र नहीं गलती,इस कारण यह नौका आदि बनाने में काम आती है। अन्य अनेक घरेलू वस्तुएं तथा कृषि के औजार भी इससे बनाये जाते हैं।

अन्य जातियां

बहेड़ा वंश की अन्य जतियां औषधि में काम आती हैं।

हर्रा (टेर्मिनालिआ चेबूला-*Terminalia chebula* Retz. — अंग्रेजी– चेबुलिक-माइरोबलान; हिंदी– हरड़, हरितकी; तमिल– हरक्कज– प्लेट 29) : यह वृक्ष भी लगभग उसी क्षेत्र में पाया जाता है जहां बहेड़ा। कुछ पुरानी पुस्तकों में इसे अव्यथा का नाम दिया है अर्थात व्यथा हरनेवाला। यह मझोला या बड़ा वृक्ष होता है,इसके पत्ते 10-20 सेमी लंबे,अंडाकार,निशिताग्र होते हैं। किंतु शाखाओं के शीर्ष पर इकट्ठा नहीं होते,समूची शाखा पर आमने सामने लगे रहते हैं। पत्तों के आधार पर,नीचे की ओर,दो ग्रंथियां होती हैं। फूल मटमैले सफेद रंग के होते हैं और शाखाओं के शीर्ष पर लगी स्पाइकों में आते हैं। फल 2-4 सेमी लंबे होते हैं,इन पर 5 शिराएं उभरी हुई और स्पष्ट होती हैं।

सूखे हुए फल,हरड़ की औषधि में काम आते हैं। हरड़ पुराने फोड़े,नासूर व जख्म पर उपयोगी है। मुंह में छाले या सूजन होने पर इसके पानी के गरारे व कुल्ली कराते हैं। हरड़ रेचक भी होती है,यह हृदय के लिए बलकारक होती है तथा रक्तचाप पर भी इसका कुछ प्रभाव बताते हैं। पिसी हुई हरड़ से दांतों के मसूड़े मजबूत करने के मंजन बनाते हैं। त्रिफला में डालकर तो हरड़ नाना प्रकार से उपयोगी है। हरड़ का आचार,मुरब्बा,चटनी,चूर्ण आदि भी बहुत प्रयोग होते हैं। यह पाचक,मृदु रेचक बताये जाते हैं।

अर्जुन (टेर्मिनालिआ अर्जुना-*Terminalia arjuna* Wt. & Am. हिंदी –काहू, कोव्हा; संस्कृत– इंद्रद्रुम– चित्र 23) : यह वृक्ष लगभग सारे भारत में,विशेषकर जल के निकट, नदी नालों के किनारे अधिक होता है। इसकी छाल स्तंभक होती है और ज्वर,हड्डी टूटने तथा अंदरूनी चोट (गुम चोट) में उपयोगी है; यह हृदय के लिए भी बलकारी है।

इस वृक्ष को कुछ पुस्तकों में नदीसरजा का नाम दिया है, अर्थात नदी के किनारे उगने वाला।

78. गिलो

(टीनोस्पोरा)

वैज्ञानिक नाम : **टीनोस्पोरा कॉर्डीफोलिआ** [*Tinospora cordifolia* (Willd.) Hook f. & Th.]

रंगीन प्लेट VI

(कुल–मेनीस्पेर्मेसिए)

अन्य नाम : **हिंदी** – गिलोय;
संस्कृत, तमिल – अमृतवल्ली;
गुजराती – गड़ो, गलो, गुलवेल;
कन्नड़ – अमृतवल्ली, अनेबुले;
तेलुगु – गुडुची;
बंगला – गुलंचो;
मराठी – गुलवेल;
मलयालम – अमृत;
(**मद्रास** – थिप्पाथेगा)।

वर्णन

यह एक बड़ी लता होती है, इसकी शाखाएं सरस होती हैं। बरगद की तरह, इसकी शाखाओं में से अनेक जड़ें फूटकर नीचे लटक जाती हैं। शाखाओं पर अनेक छोटी सफेद ग्रंथियां होती हैं। पत्ते 5-10 सेमी लंबे, अंडाकार अथवा मंडलाकार होते हैं, उनमें 7-9 शिराएं होती हैं। डंठल पत्तों से थोड़े ही छोटे होते हैं। फूल बहुत छोटे होते हैं; नर व मादा पुष्प अलग अलग उगते हैं। नर पुष्प सहपत्रों के कक्ष में गुच्छों में लगते हैं, मादा पुष्प अकेले अकेले उगते हैं। फल बड़ी मटर के दाने के बराबर व लाल होते हैं।

प्राप्ति-स्थान

गिलो के पौधे भारत के सभी उष्ण क्षेत्रों में पाये जाते हैं।

औषधीय गुण

गिलो की शाखाएं ग्रीष्म ऋतु में इकट्ठा करके, सुखा ली जाती हैं। शाखाओं की छाल को क्षति नहीं पहुंचनी चाहिए। ये सूखी शाखाएं ही औषधि में काम आती हैं।

गिलो पौष्टिक और कामोद्दीपक होती है, यह कालिक ज्वरों में उपयोगी है। पौधे के तनों और जड़ों से प्राप्त स्टार्च अतिसार और पेचिश में लाभप्रद है। यह स्टार्च बलवर्द्धक होता है।

79. बिषखोपड़ा

वैज्ञानिक नाम : **ट्रिआंथेमा पोर्टूलाकास्ट्रूम** (*Trianthema portulacastrum* L.)
(अस्वीकृत नाम : **ट्रिआंथेना मोनोगीना**)

चित्र 24

(कुल– एज़ोएसिए)

अन्य नाम : **हिंदी** – लालसाबुनी;
संस्कृत – पुनर्नवी;
कन्नड़ – कोम्मे, पसले-सोप्पू, मुच्छुजोनि;
गुजराती – साटोड़ी;
तमिल – शारुन्नई;
तेलुगु – गलीजेर;
पंजाबी – बिषखपरा;
बंगला – साबुनी।

वर्णन

यह भूमि पर फैलता हुआ सरस पौधा है। इसकी शाखाएं विभाजित हो-हो कर दूर दूर तक फैल जाती हैं। शाखाएं चतुर्कोण होती हैं। पत्ते शीर्ष पर अधिक चौड़े होते हैं। फूल अत्यंत छोटे होते हैं, और पत्तों के कक्ष में लगे स्पष्ट दिखाई भी नहीं देते। फल भी अत्यंत छोटे होते हैं। फूल की तरह फल भी, कक्ष में छुपे होने के कारण, दूर से स्पष्ट दिखाई नहीं देते। बीज काले रंग और गुर्दे के आकार के होते हैं।

प्राप्ति-स्थान

यह पौधा समस्त भारत में पाया जाता है।

औषधीय गुण

बिषखोपड़ा के पत्ते औषधि में प्रयोग होते हैं।

पत्तों में 'पुनर्नवीन' नाम का एल्केलाइड होता है। यह मूत्रविरेचक होता है और जलोदर में उपयोगी है। जिगर या गुर्दे के विकारों के कारण यदि शरीर फूल जाता है, उसमें भी बिषखोपड़ा उपयोगी है। इन रोगों की प्रारंभिक अवस्था में तो यह औषधि विशेषकर लाभप्रद तो होती है, किंतु कभी कभी यह लाभ स्थायी नहीं होता है।

बिषखोपड़ा के पौधे में गर्भपात गुण हैं अथवा नहीं, इस पर कुछ परीक्षण किये गये हैं। यह गर्भाशय को संकुचित तो अवश्य करता है।

अन्य जातियां

बिषखोपड़ा के वंश की एक जाति गदाबानी (ट्रिआंथेमा डेकांड्रा *Trianthema decandra* L.) भी औषधि में प्रयोग होती है। इसकी जड़ें रेचक होती हैं, तथा मासिक धर्म बंद होने पर अथवा फोतों की सूजन में उपयोगी होती हैं। गर्भपातक गुण के लिए इस जाति पर भी परीक्षण किये गये हैं, किंतु अभी तक कोई निश्चित फल नहीं मिला है।

चित्र 24 – **बिषखोपड़ा** (ट्रिआंथेमा पोर्टूलाकास्ट्रम)

80. गोखरु

वैज्ञानिक नाम : **ट्रीबुलुस टेर्रीस्ट्रिस** (*Tribulus terrestris* L.) चित्र 25

(कुल– ज़ाइगोफ़ील्लेसिए)

अन्य नाम : **संस्कृत** – लघु-गोक्षुर;
कन्नड़ – नेग्गलू;
गुजराती – एकाटी, बैठा-गोखरु;
तमिल – नेरुजी;
तेलुगु – पल्लेरु;
बंगला, मराठी, पंजाबी – छोटा गोखरु;
मलयालम – नेरिंगिल;
(**अजमेर–मेरवाड़** – कांटी)।

वर्णन

यह पौधा भूमि पर फैलता है; समूचे पौधे पर सूक्ष्म रोम होता है। पत्ते आमने सामने जोड़े में, 5-8 सेमी लंबे, संयुक्त होते हैं। प्रत्येक पत्ते में 8-12 मिमी लंबे, 4-7 जोड़े पत्रक होते हैं। फूल पीले, 1-1.5 सेमी व्यास के होते हैं, और पत्तों के कक्ष में, अथवा पत्तों के डंठल के सामने अकेले लगते हैं। फलों का आकार बड़ा विचित्र होता है; फलों में 5 अंडप होते हैं; फलों पर अनेक कांटे-से होते हैं। जिनसे यह कपड़ों, जानवरों के बालों व गाड़ियों के पहियों आदि में चिपक जाते हैं। साइकिल के पहियों में पंक्चर करने वाली वस्तुओं में गोखरु के फल भी शामिल हैं। फल में अनेक बीज होते हैं।

प्राप्ति-स्थान

यह पौधा लगभग समस्त भारत में मिलता है और 3,000 मी. की ऊंचाई तक के स्थानों में पहुंच जाता है।

गोखरु के फल ही औषधि में काम आते हैं। गोखरु मूत्र-संबंधी रोगों एवं यौन दुर्बलता में उपयोगी है। यह शीतल होता है। फलों का क्वाथ गठिया और गुर्दे के रोगों में लाभप्रद

है। यह मूत्र विरेचक भी होता है। इस संबंध में अस्पतालों में रोगियों पर अनेक परीक्षण किये गये हैं, और गोखरु के मूत्रल गुण की पुष्टि हुई है।

चित्र 25 - **गोखरू** (ट्रिबुलुस टेर्रेस्ट्रिस)

इस पौधे को प्राय: छोटा गोखरु, और *पेडालिउम मूरेक्स* को बड़ा गोखरु कहा जाता है। औषधि में दोनों प्रयोग होते हैं।

81. अंतमूल

(टीलोफोरा)

वैज्ञानिक नाम : **टीलोफोरा ईंडिका** [*Tylophora indica* (Burm f.) Merr]
(अस्वीकृत नाम : **टीलोफोरा आस्थमाटिका**)

रंगीन प्लेट IX

(कुल– एस्कलीपिएडेसिए)

अन्य नाम : **उड़िया** – मेंडी;
कन्नड़ – आडुमुट्टेदगिडा;
तमिल – कगितम;
मराठी – पितकारी;
मलयालम – वल्लिपाल ।

पौधे के पुराने नाम से आस्थमाटिका शब्द इसके दमा के रोग में उपयोगी होने के कारण दिया गया था ।

वर्णन

यह एक आरोही पौधा होता है, इनमें अनेक लंबी सरस जड़ें होती हैं । पत्ते आमने सामने जोड़े में 5-10 सेमी लंबे, अंडाकार और प्रायः निशिताग्र होते हैं । फूल बड़े, पीले-से रंग के होते हैं, उनके दलपुंज का भीतरी भाग बैंजनी होता है । फूल छोटे गुच्छों में लगते हैं । फल 5-10 सेमी लंबे, शीर्ष पर नुकीले होते हैं, उन पर कई उभरी हुई धारियां होती हैं । दो-दो फल एक साथ लगते हैं ।

प्राप्ति-स्थान

यह पौधा मध्य, पूर्वी एवं दक्षिण भारत में पाया जाता है, और प्रायः मैदानी प्रदेश में या 1,000 मी ऊंचाई तक की तलहटियों में होता है ।

औषधीय गुण

पौधों की जड़ों को सुखाकर औषधि में प्रयोग करते हैं ।

अंतमूल को ईपेकाक के स्थान पर भली भांति प्रयोग कर सकते हैं। इस कारण यह पेचिश की चिकित्सा में विशेष लाभप्रद है। जड़ों का क्वाथ दमा और श्वास नली की सूजन में दिया जाता है। इसके सेवन से कै (वमन) हो जाती है और खांसी में शांति पड़ जाती है।

83. बिल्लीलोटन

(वेलीरिआना)

वैज्ञानिक नाम : **वेलीरिआना ऑफ्फीसिनालिस** (*Valeriana officinalis* L.)

(कुल– वेलीरिएनेसिए)

अन्य नाम : **हिंदी** – बदरंगबोया, जलाकन;
बंगला – कालोबाला;
मराठी – कालाबला ।

वर्णन

यह एक बहुवर्षीय पौधा होता है और 1 मी तक ऊंचा हो जाता है । इसकी जड़ तने से भी अधिक मोटी होती है और उसमें से अंतःभूस्तारी (सकर) निकल कर फैलते हैं । तना निचले भाग में रोमिल और ऊपर चिकना होता है, तने में संकरे खांचे-से होते हैं । निचले पत्तों के डंठल अधिक लंबे होते हैं, ऊपर वालों के छोटे । फूल छोटे, सफेद या मटमैले रंग के और शाखाओं के शीर्ष पर छोटे गुच्छों में होते हैं । फल छोटे, चिकने तथा अरोमिल होते हैं ।

प्राप्ति-स्थान

यह पौधा कश्मीर के 2,500 मी ऊंचाई के कुछ क्षेत्रों में मिलता है ।

औषधीय गुण

इस पौधे की जड़ें और प्रकंद औषधि में काम आते हैं । जड़ों को शरद ऋतु में इकट्ठा करने, तथा धीरे धीरे सुखाने से अच्छी औषधि बनती है ।

यह औषधि स्नायुमंडल की क्रिया को मंद करती है और हिस्टीरिया के दौरे, मूर्च्छा तथा ज्ञानतंतुओं के अन्य विकारों में और पेट के अफारा में उपयोगी है । ताजी जड़ों और प्रकंदों का रस अधिक लाभप्रद होता है, सूखने पर इनका प्रभाव कम हो जाता है ।

ताजे रस में स्वापक (नशीले) गुण भी अधिक होते हैं और यह अनिद्रा रोग में लाभप्रद होता है, रस में हृदय रोगों की कुछ औषधियां भी बनती हैं ।

अन्य जातियां

बिल्लीलोटन के वंश की एक अन्य जाति मुश्कबाला (वेलीरिआना वालिचिई *Valeriana wallichii* DC. – संस्कृत– तगर, अंग्रेजी– इंडियन-बलेरियन) हिमालय के पर्वतीय क्षेत्रों में कश्मीर से असम तक पाई जाती है । इसमें भी बिल्लीलोटन जैसे ही गुण होते हैं, तथा यह उन सभी रोगों की चिकित्सा में प्रयुक्त होती है ।

भारत में पर्वतीय क्षेत्रों में इसकी कृषि की जा सकती है ।

84. अश्वगंध

वैज्ञानिक नाम : **वीदानिआ सोम्नीफेरा** (*Withania somnifera* Dunal)

चित्र 26

(कुल– सोलेनेसिए)

अन्य नाम : **हिंदी** – अश्वगंध;
कन्नड़ – हिरेमद्दिनेगिड;
गुजराती – आसुन, घोड़ा-आसोड़, सांठियाना-पोपटा;
मलयालम – अमुक्किक्करम ।

वर्णन

यह एक छोटी मझोली झाड़ी होती है, कभी कभी अश्वगंध के पौधे 1.5 मी तक ऊंचे हो जाते हैं । इसके तने और शाखाओं पर सूक्ष्म ताराकार रोम होता है । पत्ते लगभग 10 सेमी तक लंबे, अंडाकार, रोमिल होते हैं । फूल केलई रंग के, छोटे, लगभग 1 सेमी लंबे होते हैं और पत्तों के कक्ष में लगे छोटे गुच्छों में लगते हैं । फल 6 मिमी व्यास के, गोल, चिकने व लाल होते हैं । फल बाह्य दलपुंज के अंदर ढके रहते हैं ।

प्राप्ति-स्थान

अश्वगंध प्रायः भारत के शुष्क स्थानों में मिलता है, इसकी खेती भी की जाती है ।

औषधीय गुण

अश्वगंध की जड़ें औषधि में काम आती हैं ।

अश्वगंध क्षयरोग, दुर्बलता और गठिया में प्रयोग होती है, यह मूत्रल है, तथा इसमें स्वापक एवं अवरोधनाशक गुण भी हैं । जड़ों को पीसकर या घिसकर फोड़े, जख्म और सूजन पर लगाते हैं ।

परीक्षणों द्वारा जड़ों एवं पत्तों के एंटीबायोटिक तथा एंटीबैक्टीरियल गुणों की पुष्टि हुई है ।

अन्य जातियां

अश्वगंध के वंश का एक पौधा आकरी (वीदानिआ कोआगुलेंस – *Withania coagulens* Dunal – पंजाबी– खमजीरा) भारत के उत्तर-पश्चिमी भाग में मिलता है। इसके फल पाचन संबंधी तथा जिगर के विकारों में उपयोगी होते हैं।
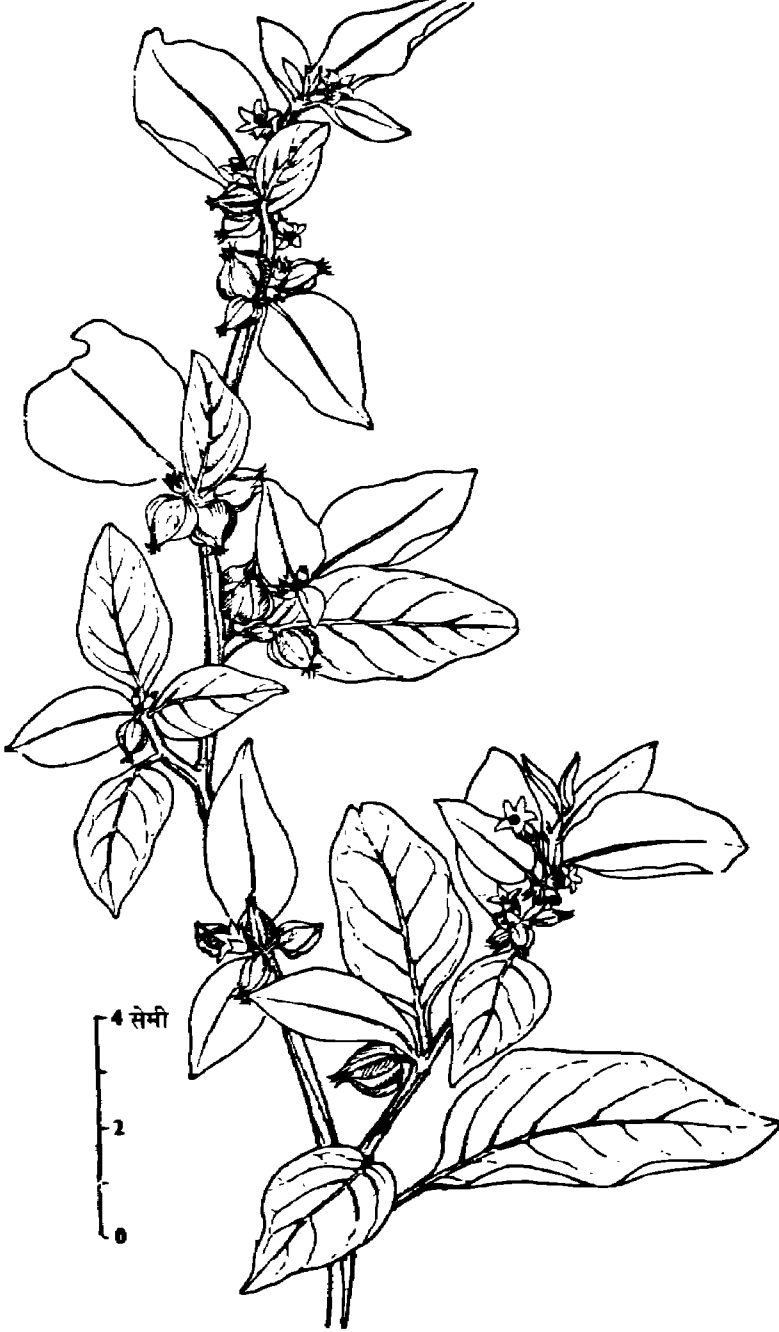
चित्र 26 – **अश्वगंध** (वीदानिआ सोम्नीफेरा)

82. जंगली-प्याज

(इंडियन स्कविल)

वैज्ञानिक नाम : **ऊर्जीनिआ ईंडिका** [*Urginea indica* (Roxb.) Kunth]

(कुल– लिलिएसिए)

अन्य नाम : **हिंदी** – बनप्याज,कोलिकंदा;
संस्कृत – कोलकंद;
कन्नड़ – काडुबल्लुलि;
गुजराती – जंगली-कांदो,पेण-कांदो;
तमिल – नरिवेंगायम;
तेलुगु – नक्कवल्लिगड्डु;
बंगला – बोनपियांज;
मराठी – रानकांदा।

वर्णन

यह एक छोटा पौधा होता है,इसमें कंद आता है। कंद 5-10 सेमी व्यास का अंडाकार या गोल, मटमैले सफेद या पीले रंग का होता है। कंद के पास वाले पत्ते लंबे,संकरे और नुकीले होते हैं। स्तंभ सीधा,लगभग 45 सेमी ऊंचा होता है। फूल भूरे रंग के होते हैं और स्तंभ के शीर्ष पर लंबे गुच्छों में आते हैं। फल 1.5-2 सेमी लंबे तथा आधार एवं शीर्ष दोनों ओर संकरे होते हैं। बीज काले होते हैं।

प्राप्ति-स्थान

यह पौधा उत्तर-पश्चिमी भारत में हिमालय पर्वत के 2,000 मी ऊंचाई वाले प्रदेश से लेकर दक्षिण में केरल तक तथा पूर्व में बिहार तक पाया जाता है।

औषधीय गुण

शल्य-कंद के बाहरी सूखे छिलके हटा दिये जाते हैं। तब कंद के पतले फलके काटकर सुखा लेते हैं; यह औषधि में काम आते हैं।

इस औषधि में लगभग वही गुण होते हैं जो तिलपुष्पी में, किंतु इसका प्रभाव कुछ हल्का होता है, और इसलिए इस औषधि का सेवन अधिक मात्रा में करना पड़ता है। जंगली-प्याज उन रोगियों के लिए विशेषकर उपयोगी होता है जिनकी चिकित्सा के लिए तिलपुष्पी का प्रयोग उपयोगी तो होगा, किंतु एलर्जी आदि किन्हीं कारणों से तिलपुष्पी का प्रयोग किया नहीं जा सकता। यह हृदय के रोगों में, खांसी और श्वास नली की सूजन में उपयोगी है। यह मूत्रविरेचक भी है।

भारत में होने वाली स्कविल में अर्थात जंगली-प्याज में यूरोपीय स्कविल ऊर्जीनिआ मारीटिमा *Urginea maritima* (L.) Baker] जैसी ही क्षमता व गुण हैं। अस्पतालों में रोगियों पर किये गये परीक्षणों से यह सिद्ध हो गया है कि जंगली-प्याज पुरानी खांसी व श्वास नली की सूजन में लाभप्रद है।

लगभग समस्त भारत की भूमि व जलवायु इसके रोपण के लिए उपयुक्त है, और कहीं भी इसकी खेती सुविधा से हो सकती है।

संदर्भ-सूची

अघारकर, एस. पी. – 1953 : *गजेटियर, मुंबई स्टेट*– ए, बॉटनी भाग I मेडिसिनल प्लांट्स, मुंबई।

उपहोफ, जे. सी. – 1959 : *डिक्शनरी ऑव इकॉनॉमिक प्लांट्स*, न्यूयार्क।

कविरत्न, अविनाशचंद्र : *इंगलिश ट्रांसलेशन ऑव चरक-संहिता*, कलकत्ता।

कीर्त्तिकार, के. आर. एवं बी. डी. बसु – 1935 : *इंडियन मेडिसिनल प्लांट्स*, भाग 1-4 इलाहाबाद।

गुप्त, आर. – 1972 : "आगामी भारतीय आर्थिक फसलों के रूप में अत्यावश्यक औषधि एवं तेल वाले पौधे" *भारतीय फार्मेसी*, 33।

चोपड़ा, रामनाथ – 1958 : *इंडीजिनस ड्रग्स ऑव इंडिया* (1933 के संस्करण से संशोधित), कलकत्ता।

चोपड़ा, रामनाथ एवं आर. एल. बघवार एवं एस. घोष – 1949 : *पाइजनस प्लांट्स ऑव इंडिया*, नयी दिल्ली।

चोपड़ा, रामनाथ एवं आई. सी. चोपड़ा – 1955 : *ए रिव्यू ऑव वर्क ऑन इंडियन मेडिसिनल प्लांट्स*, नयी दिल्ली।

चोपड़ा, रामनाथ एवं आई. सी चोपड़ा तथा बी. एस. वर्मा – 1969 : *सप्लीमैंट टू द ग्लॉसरी ऑव इंडियन मेडिसिनल प्लांट्स*, नयी दिल्ली।

चोपड़ा, रामनाथ; एस. एल. नायर एवं आई. सी. चोपड़ा – 1959 : *ग्लॉसरी ऑव इंडियन मेडिसिनल प्लांट्स*, नयी दिल्ली।

जैन, सुधांशु कुमार – 1963 : स्टडीज इन इंडियन एथनोबॉटनी – प्लांट्स यूज्ड इन मेडिसिन बाई ट्राइबल्स ऑव मध्य प्रदेश, *बुलेटिन रीजनल रिसर्च लेबोरेटरी* जम्मू 1 (2) 126-128।

जैन, सुधांशु कुमार – 1965 : ऑन दि प्रोस्पेक्ट्स ऑव सम न्यू ऑर लेस नोन मेडिसिनल प्लांट रिसोर्सेज, *इंडियन मेडिकल जर्नल* 59, 270-272।

जैन, सुधांशु कुमार – 1965 : मेडिसिनल प्लांट-लोर ऑव दि ट्राइबल्स ऑव बस्तर (मध्य प्रदेश), *इकॉनॉमिक बॉटनी* 19, 236-250।

जैन, सुधांशु कुमार – 1967 : *वनस्पतिकोश– उपयोगी पौधों का हिंदी-लैटिन कोश*, दिल्ली।

जैन, सुधांशु कुमार – (संपा.) 1981 : *ग्लिम्पसेज ऑव इंडियन एथनोबॉटनी*, ऑक्सफोर्ड, नयी दिल्ली।

जैन, सुधांशु कुमार एवं चित्तरंजन तरफदार – 1963 : स्टडीज इन इंडियन एथनोबॉटनी– नेटिव प्लांट रेमेडीज फॉर स्नेकबाइट अमोंग दि आदिवासीज़ ऑव सेंट्रल इंडिया, *इंडियन मेडिकल जर्नल* 59, 307-309 ।

जैन, सुधांशु कुमार एवं चितरंजन तरफदार – 1970 : मेडिसिनल प्लांट– लोर ऑव दि संथाल्सः *इकॉनॉमिक बॉटनी* 24, 241-278 ।

ठाकर, जयकृष्ण–इंद्राजी – 1926 : *श्री कच्छास्वथास्ननी वनस्पतियों अने तेना उपयोगिता,* मुंबई ।

त्रिवेदी, कृष्णप्रसाद – 1961-67 : *धन्वंतरि, वनौषधि विशेषांक,* भाग 1-4 अलीगढ़ ।

दत्त, यू. सी. – 1870 : *दि मैटीरिया मेडिका ऑव दि हिंदूज,* कलकत्ता ।

दस्तूर, जे. एफ. – 1951 : *मेडिसिनल प्लांट्स ऑव इंडिया एंड पाकिस्तान,* मुंबई ।

नादकर्णी, ए. के. – 1954 : डॉ. के. एम. नादकर्णी के, *इंडियन मैटीरिया मैडिका,* का संशोधित संस्करण, मुंबई ।

बिस्वास, के. पी. – 1956 : *कॉमन मेडिसिनल प्लांट्स ऑव दार्जीलिंग एंड दि सिक्किम हिमालयाज,* कलकत्ता ।

बिस्वास, के. पी. एवं ई. घोष – 1950-52 : *भारतीय वनौषधि,* भाग 1,2; कलकत्ता ।

बी. पी. सी. – 1963 : *ब्रिटिश फर्मेस्यूटिकल कोडेक्स,* लंदन ।

भंडारी, चंद्रराज – 1951-57 : *वनौषधि चंद्रोदय,* भाग 1-10, वाराणसी ।

भटनागर, एस. एस. आदि – 1961 : बायोलोजिकल एक्टीविटी ऑव इंडियन मेडिसिनल प्लांट्स *इंडियन जर्नल ऑव मेडिकल रिसर्च* 40, 799-813 ।

भटनागर, एस. एस. आदि – 1961 : फिजियोलोजिकल एक्टीविटी ऑव इंडियन मेडिसिनल प्लांट्स, *जर्नल ऑव साइंटिफिक एंड इंडस्ट्रियल रिसर्च,* परिशिष्ट, 20 ए; 1.24 ।

भारत की संपदा, अर्थात *वैल्थ ऑव इंडिया* (रॉ मैटीरियल्स) 1948-66 भाग 1-7, नयी दिल्ली ।

भिषगरत्न, कुंजलाल – 1907-16 : *इंगलिश ट्रांसलेशन ऑव सुश्रुत-संहिता,* कलकत्ता ।

मजूमदार, गिरजाप्रसाद – 1927 : *वनस्पति-प्लांट्स एंड प्लांट-लाइफ एज इन इंडियन ट्रीटाइजेस एंड ट्रैडीशंस,* कलकत्ता ।

महेश्वरी, पंचानन एवं उमराव सिंह – 1965 : *डिक्शनरी ऑव इकॉनॉमिक प्लांट्स इन इंडिया,* दिल्ली ।

मुखर्जी, बी. – 1953 : *दि इंडियन फार्मेस्यूटिकल कोडेक्स,* नयी दिल्ली ।

म्हास्कर, के. एस. एवं जे. एफ. कायुस – 1931 : इंडियन प्लांट रेमेडीज यूज्ड इन स्नेक-बाइट, *इंडियन मेडिकल रिसर्च मेमायर्स, 19* ।

यू. एस. डी. – 1955 : *यूनाइटेड स्टेट्स डिस्पेंसरी,* फिलाडेल्फिया ।

वाट, जार्ज – 1889-93 : *ए डिक्शनरी ऑव इकॉनॉमिक प्रोडक्ट्स ऑव इंडिया,* भाग 1-6, कलकत्ता ।

वीरमानी, ओ. पी. आदि – 1980 : *करंट स्टेटस ऑफ मेडिसिनल प्लांट इंडस्ट्री इन इंडिया,* इंडियन ड्रग्स 17 (10) 318-340 ।

वरेन, आर. सी. – 1950 : *पाटर्स साइक्लोपेडिया ऑव बोटेनिकल ड्रग्स एंड प्रिपेरेशंस* (संशोधित संस्करण), लंदन ।

ब्हिटने, डब्लू. डी. – 1962 : *अथर्ववेद संहिता,* भाग 1-2, वाराणसी ।

शाह, एन. सी. – 1981 : *नीड ऑफ सिस्टेमेटिक कल्टिवेशन एंड कलेक्शन ऑव मेडिसिनल हर्ब्स,* इंडियन ड्रग्स, 18 (6) 210-217 ।

संतापाऊ, हेरेमेनिगिल्ड – 1963 : फ्लोरा ऑव खंडाला आन वैस्टर्न घाट्स ऑव इंडिया, *रेकार्ड्स बोटेनिकल सर्वे ऑव इंडिया* 16 (1) 1-335 ।

सुंदरराज, डेनियल एवं जी. बालसुब्रामण्यम – 1959 : *गाइड टु इकॉनामिक प्लांट्स ऑव इंडिया,* चेन्नई ।

सत्यवती, जी. बी. आदि, (संपा.) – 1976 : *मेडिसिनल प्लांट्स ऑव इंडिया,* भाग 1 इंडि. काउं. मेडिकल रिसर्च, नयी दिल्ली ।

नोट : इन संदर्भों के अतिरिक्त अनेक पत्रिकाओं आदि से सामग्री ली गयी है । विशेषतया निम्न वैज्ञानिक पत्रिकाओं में छपी सामग्री उपयोगी पाई गयी ।

इंडियन जर्नल ऑव फार्मेसी;

इंडियन जर्नल ऑव मेडिकल रिसर्च;

इंडियन जर्नल ऑव साइंटिफिक एंड इंडस्ट्रियल रिसर्च ।